आधी दुनिया

वर्ष-28, अंक - 1, जनवरी-मार्च 2022

महिला शिक्षण सामग्री

वह जो थी कान्ता सुधाकर

त्रासदी- 1

मैंने तो खेती की थी
सूरज की
अब
अंधेरे के इतने पौधे
उगा आए कहां से?
मैं इन अंधेरों का
क्या करूं? मन की
छोटी-सी बगिया में
नहीं है कोई जगह
इन्हें रखने की।
अब मेरी त्रासदी यह है
कि अब मैं फिर से
खेती करूं सूरज की
यह मुमकिन नहीं।
साथ ही
भूल चुकी हूं
खेती करना सूरज की
पर इतना जरूर कर सकती हूं
कि डूबते सूरज के साथ
जा सकती हूँ
हमेशा के लिए एक दिन।

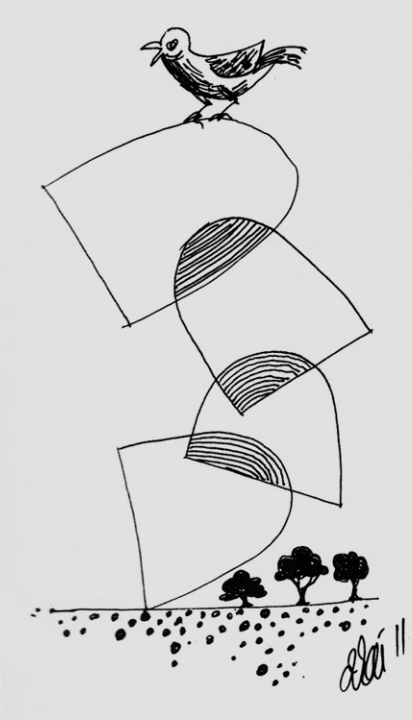

त्रासदी- 2

अब
मेरे सामने और असंख्य अंधेरी गुफाएं हैं
और
मेरी त्रासदी यह है कि
मेरे हाथ में
दिया सलाई की
एक भी तीली नहीं।
अब किसके सहारे मैं
इतनी अंधेरी गुफाओं को पार करूँ।
अब तो भयभीत हूं
कहीं ऐसा ना हो, कि
मृत्यु के समय
एक बूंद रोशनी को
तरस-तरस जाऊं मैं।

- कान्ता सुधाकर

वर्ष-24, अंक -1, जनवरी-मार्च 2022

आधी दुनिया

संपादक
रोज केरकेट्टा

संपादक मंडल
सालगे मार्डी
सुनील मिंज
श्रावणी
शशि बारला

कलापक्ष
इंडिजिनोग्राफिक्स

संपादन कार्यालय
संवाद
301/ए, उर्मिला इन्क्लेव
पीस रोड, लालपुर
रांची - 834001 (झारखंड)
फोन - 0651-2530356
E-mail : **sarjomsamvad@gmail.com**
Website : **www.samvad.net**

पत्रिका में प्रकाशित आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के हैं, उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

रोज केरकेट्टा द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा आई.डी.पब्लिशिंग, रांची द्वारा मुद्रित

सीमित प्रसार

03	वह जो थी कान्ता सुधाकर	**सुधाकर**
04	मां को देखा	**कल्पना**
05	एक थीं कान्ता भाभी...	**चंद्रेश**
07	और नदी बहती है...	**डॉ. सुमनलता**
09	एक संवेदना से भरी नदी का न होना..	**डॉ. उत्तम पीयूष**
10	कान्ता सुधाकर : एक अनमोल शख्सियत	**धनंजय प्रसाद**
11	कविता जैसी कान्ता भाभी	**प्रकाश देवकुलिश**
12	कान्ता भाभी को शब्दांजलि	**घनश्याम**
13	कान्ता सुधाकर यानी इंदिरा मिश्रा : एक गुमनाम कविता थीं	**श्रावणी**
15	अजातशत्रु थीं कान्ता भाभी	**ललन**
16	बहती नदी-सी एक कविता थीं कान्ता सुधाकर	**वीणा वर्मा**
17	मां तो मां होती है	**अनीमा**
18	मुझे एक मां और मिल गयी थी	**रुकसार**
19	माँ	**अनन्त सुधाकर**
20	आभार	**सीमा**
21	मां का समाजवाद	**सीमांत**
23	संपादक कान्ता सुधाकर की आधी दुनिया	
28	अपना सच	**डॉ. राधाकृष्ण सहाय**
29	लापता होती नदियों की दास्तान	**आशुतोष**
33	लड़की मत देखो आसमान	**यादवेन्द्र**
34	रौशनी की तलाश	**कान्ता सुधाकर**

कविता कहानी बन गई और कहानी कविता

कविता और कहानी के समन्वय का नाम था – कान्ता सुधाकर! कान्ता और सुधाकर – दो स्वतंत्र नाम, दो स्वायत्त अस्तित्व और दो अलग विधा का नाम था कभी!! दोनों ने जब सहजीवन का रास्ता तलाशा तो नाम बदल गए और तस्वीर भी। कान्ता जी सबके लिए कान्ता भाभी बन गईं और सुधाकर मिश्र सबके लिए सुधाकर भैया। उस संयुक्त तस्वीर में से एक खूबसूरत तस्वीर, जिसको सभी प्रेम से कहते थे कान्ता भाभी, ने पहली जनवरी '22 के प्रवेश करते ही, हमसबों को अलविदा कह दिया। उनका जाना एक ऐसी विधा का खो जाना है, जो हर इंसान में कविता तलाशती थी।

कविता गढ़ना उनकी मूल प्रवृत्ति थी और रसोई घर में जायकेदार भोजन बनाना दिली इक्छा, लेकिन इन दोनों से बढ़कर थी भोजन करनेवाले की भंगिमा में कविता ढूंढना। जब कोई उनके भोजन से तृप्त होता दिखता तब उन्हें लगता कान्ता की कविता पूर्ण हो गई।

सुधाकर जी ने अपनी नौकरी से अवकाश के बाद मधुपुर में बसना तय किया। जो घर उन्होंने खरीदा उसका नाम रखा आस्था! इस सुंदर नाम के अनुरूप मानवता के प्रति आस्था बरकरार रखते हुए कान्ता जी और सुधाकर जी ने इस घर को रचना और सृजन के प्रति आस्था रखने वालों की आस्था का केन्द्र बना दिया।

कान्ता जी के जाने के बाद वह आस्था उदास-सा दिखता है। अकेले पड़े सुधाकर जी और उनकी बेटी सीमा ने कोई कसर नहीं छोड़ी है उसे गुलजार बनाए रखने की। लेकिन आस्था की कवितात्मक बोध/रस/लय तो कान्ता जी ही थीं। जो चली गईं। आस्था की कविता चलीं गईं।

अलविदा कान्ता जी! आस्था में कवितात्मक माहौल बना रहे यही कान्ता जी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। कान्ता भाभी को शब्दांजलि!

वह जो थी कान्ता सुधाकर

सुधाकर

कान्ता सुधाकर एक आदर्श पत्नी थी। वह अपने तमाम रिश्तों को बड़ी सहजता और निष्ठा से निभाती थी। चाहे वह पारिवारिक हो, सामाजिक या साहित्यिक जो भी उनके संपर्क में आता था, उनका प्रशंसक बन जाता था। अपने बच्चों को कान्ता ने बहुत अच्छे संस्कार दिए। कान्ता एक कुशल गृहणी थी। मेरे वेतन अथवा पेंशन की सीमित पैसों का बड़ी कुशलता से उपयोग करती थी। अपव्यय करना उसे एकदम पसंद नहीं था। दिखावे की कोई आदत नहीं थी। सीमित आय में से भी वह बचत कर पैसे बचाकर कई बार कठिन समय में बड़ी राहत दी थी। पैसों पर आधारित उसकी कोई निजी महत्वाकांक्षा नहीं थी। घर आए लोगों को वह खुले दिल से स्वागत करती थी। उनकी कभी भी उपेक्षा नहीं करती थी, निकट अथवा दूर के पारिवारिक रिश्तेदारों आगंतुकों के प्रति अपने दायित्व से वह कभी विमुख नहीं हुई। जीवन में उसका कभी किसी से मनमुटाव अथवा दुराव नहीं हुआ। सबसे बढ़कर कान्ता मेरी पूरक थी। मेरी मेंटोर थी। वह अब नहीं रही, उसके बिना मैं अधूरा हूं। महान गायक सहगल के गाए हुए गीत की पंक्तियां हैं :

जिंदा हूं इस तरह के गमे जिंदगी नहीं
जलता हुआ दिया हूं, मगर रोशनी नहीं

कान्ता अब मेरे लिए स्मृति शेष है, जो इतना बड़ा, इतना घना और संतप्त है कि उसकी एक एक परत हटाकर देखने में मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा। उनमें से किसी एक को अलग कर देखना बहुत कठिन है। उसे छूते ही वह विलुप्त हो जाती है। जैसे समुद्र किनारे पानी की एक तरंग से बालू पर बना कोई चित्र।

कान्ता की छवि एक स्थाई रूप से मेरी आंखों में बसी हुई है। सन 2021 में अधिकांश अवधि में प्रोस्टेट की गंभीर बीमारी से पीड़ित रहा। दिसंबर महीने में नई दिल्ली के एक अस्पताल में मेरे प्रोस्टेट का ऑपरेशन हुआ। उन

दिनों कान्ता मानसिक रूप से बहुत बेचैन रहती थी। उसे मेरी मृत्यु और उसके बाद के अपने भविष्य की भविष्य के घोर अंधकार की आशंका के साथ-साथ उसके लिए दोषी होने के आरोपों का दंश का तमाम उम्र झेलते रहने का डर भी सता रहा था। किंतु अपने अटूट प्रेम और आस्था पर इतना विश्वास था कि नाजुक से नाजुक क्षणों में भी कभी कमजोर नहीं हुई। ऑपरेशन सफल हुआ। मैं ठीक हो गया।

उन दिनों का यदि केवल एक चित्र बनाए जाए तो वह ऐसा होगा :– मैं पेशेंट वाली प्राइवेट रूप में बेड पर लेटा हुआ हूं। कुछ दूर पर एक सोफा है पर कान्ता बैठी हुई है और उदास होकर मेरी ओर एकटक देख रही है। कान्ता प्रेम और आत्मविश्वास की पराकाष्ठा थी, प्रतिमूर्ति थी। कान्ता मेरे लिए सदा एक पहेली रही। आज भी है। दूसरा कोई भी इसे अतिशयोक्ति मानेगा कि वह साधारण स्त्री नहीं थी। मेरी नजर में वह अंतरिक्ष से आई थी। ऐसा उसने स्वयं अपनी एक कविता में लिखा भी है। शायद किसी शापवश देव लोक से धरती पर आई थी और अवधि पूरी हो जाने पर वापस वहीं लौट गई। उसने अपने विषय में बहुत सी बातें

अपनी कविताओं में कही है। उनमें से कालांतर में सच भी सिद्ध हुईं। कान्ता को समझने के लिए उसकी कविताओं में से गुजरना अनिवार्य है :

वर्षों पहले
जब सृष्टि में
छितिज का बनना
शुरू हुआ था
मिले थे तुम मुझे।
मैं तो आज भी
खड़ी हूं वहीं
छितिज के पास
ढेर सारा सपने लिए।

मैं उड़ती हुई एक दिन
पहाड़ों से गिरती हुई
हो जाऊंगी तब्दील
एक झरने में।
आज जब परदा गिरने वाला है
चाहती हूँ आज लिखना

एक लंबी कविता
और अंतिम कविता

आज मैं सदा के लिए
नेपथ्य में जाने वाली हूं
हमेशा के लिए
एक जरूरी काम की तरह
लिखना चाहती हूं
एक अंतिम कविता। ■

मां को देखा

कल्पना

कान्ता सुधाकर! निवास कालीपुर टाउन मधुपुर। मैं इस छवि को लगभग 20 वर्षों से जानती हूं। उनका व्यक्तित्व एकदम सामान्य, लेकिन करुणा से भरपूर था। उनकी आंखों में एक विशेष चमक थी। जब भी मैं उनसे बात करती थी तो मुझे लगता था कि मैं बिल्कुल अपनी ही मां से बात कर रही हूं। बहुत अपनापन महसूस होता था। अपने परिवार से लेकर समाज की महिलाओं एवं बच्चों में उन्होंने अपना वात्सल्य बिखेरा है। शिक्षा के प्रति मां का झुकाव बहुत था। हमेशा कुछ न कुछ लिखते रहना, पढ़ते रहना, उनकी आदत में शामिल था। पढ़ाई-लिखाई के अलावा खाना बनाना, बागवानी, सिलाई, कढ़ाई इत्यादि में उनकी बराबर की रूचि थी। घर आए अतिथियों का स्वागत करते हुए उनके चेहरे पर हमेशा मुस्कान बनी रहती थी। उनके जीवन से मुझे बहुत बड़ी प्रेरणा यह मिली है कि हमें अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना बहुत जरूरी है, चाहे इसके लिए हमें कितना भी संघर्ष क्यों ना करना पड़े। इसलिए मेरी नजर में कान्ता सुधाकर का मतलब एक ममतामयी मां है। ■

एक थीं कान्ता भाभी...

चंद्रेश

कुछ दिनों पहले अचानक एक बुरी खबर मिली कि कान्ता भाभी यानी कवि, लेखक और सबसे बढ़कर हर दिल अजीज कान्ता सुधाकर अब हमारे बीच नहीं रहीं। सहसा तो यह अफवाह जैसा लगा, लेकिन उनका ऐसा विरल व्यक्तित्व था कि कोई उनके मामले में ऐसी बात सपने में भी नहीं सोच सकता। उनसे जुड़े हमारे जैसे अनेक लोगों के लिए यह खबर बिजली के झटके की तरह था। काफी उधेड़बुन के बीच मैंने सीधे सीमा, जिसे बचपन से ही हमलोग गुड़िया के नाम से जानते हैं, को फोन लगाया और कान्ता भाभी के अचानक आंखें मूंद लेने के बारे में उसने विस्तार से बताया, आगे के क्रिया, कर्म के बारे में भी जानकारी दी। जब उनकी चिता सुलग रही थी, तब भी मैं सीमा के सम्पर्क में था।

कान्ता भाभी के भागलपुर के लंबे प्रवास, इस शहर से जुड़े अनेक प्रसंग, कई तरह के उतार-चढ़ाव, अचानक भागलपुर से बनवास और फिर मधुपुर-प्रवास... बायस्कोप की तरह एक-एक कर सारे दृश्य मेरी आंखों के सामने घूमते जा रहे थे... इन सबके बीच गहरे रहस्य को जैसे छुपाए उनका सदाबहार मुस्कुराता चेहरा पृष्ठभूमि में सब पर भारी पड़ रहा था। भागलपुर में मेरे जैसे अनेक लोग उस सदाबहार मुस्कुराहट के तब भी कायल थे और आज भी हैं।

बात दरअसल चार दशक से ज्यादा पुरानी है। कान्ता भाभी से पहली बार किस प्रसंग में मेरी पहली मुलाकात हुई, ठीक ठीक याद नहीं, लेकिन वर्ष 1978 में जब पहली बार भागलपुर में हमलोगों ने रूसी लेखक अंतोन चेखव की कहानी 'गिरगिट' का भागलपुर के बीचों बीच बने घंटा घर की सीढ़ियों पर नुक्कड़ नाटक के रूप में मंचन किया तो कान्ता भाभी उस नाट्य मंचन की पहली दर्शक थीं। जाहिर है, साथ में उनके हमसफर सुधाकर जी भी साथ में थे, जिन्हें हमलोग आदर से भाई जी कहते थे। उन दिनों भागलपुर के दर्शकों के लिए नुक्कड़ नाटक एक घटना की तरह था और हमारे लिए भी एकदम नया अनुभव। 'गिरगिट' के नुक्कड़ नाट्य मंचन के बाद कान्ता भाभी हमलोगों के हर नए नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति में अनिवार्य रूप से मौजूद हुआ करती थीं।

कई बार नाट्य मंचन के बाद जब शाम में हमलोग चाय के बहाने डाक-तार कॉलोनी स्थित उनके आवास पर इकट्ठा होते तो नाटक के विभिन्न पक्षों पर वे बेहद शालीन ढंग से अपनी राय व्यक्त करती थीं। उनके व्यक्तित्व में एक चुंबकीय आकर्षण था और उनसे मिलकर हमें एक अलग तरह की आत्मीय अनुभूति होती थी। घर का दरवाजा खोलने, अंदर बुलाने और फिर चाय पानी और कई बार तस्तरी में पकौड़ी सर्व करने का उनका तरीका खासकर उसमें सस्नेह, आग्रह का जो बघार होता, हम हमेशा उसके कायल रहे। जब तक कान्ता भाभी भागलपुर में रहीं, होली के मौके पर देर शाम उनके हाथ का बना लजीज मालपुआ और दही बड़ा हमलोग कभी मिस नहीं करते। हर जगह से निवृत्त होकर सबसे अंत में हमलोग दल बल के साथ, चाहे कितनी भी देर हो जाए उनके यहां जाना कभी नहीं भूलते और उन्हें भी हमलोगों का इंतजार रहता था।

भागलपुर में एक अत्यन्त संवेदनशील कवि, लेखक और एक सहृदय श्रोता के रूप में उनकी अलग पहचान थी। लेकिन, वे बेहद अंतर्मुखी थीं। अपने बारे में, अपने लेखन के बारे में खुलकर बातें करना उन्हें कतई गवारा नहीं था। उनके व्यक्तित्व की कई परतें थीं, जिन्हें समझ पाना सब के लिए बहुत आसान नहीं था। कई बार हमें महसूस होता कि उनके अंदर बहुत कुछ चल रहा होता, लेकिन कभी वे

इसे प्रकट नहीं होने देती। अपनी घर - गृहस्थी को जिस बखूबी से उन्होंने सम्हाला था और रहन-सहन, बात व्यवहार का उनका जो सलीका था, उसके लिए एक ही शब्द उचित प्रतीत होता है - अप्रतिम।

वर्ष 1977-78 में जब जान माने नाटककार, कवि, लेखक डॉ. राधा कृष्ण सहाय के संपादन में 'सप्तम स्वर' पत्रिका का भागलपुर से प्रकाशन शुरू हुआ तो 'चौखट से' स्तंभ के लिए नियमित लेखन की जिम्मेदारी कान्ता भाभी को सौंपी गई। दरअसल राधा बाबू की पारखी नजर ने उनके अंदर के रचनाकार को बखूबी भांप लिया था और कान्ता भाभी यानी कान्ता सुधाकर ने इस बात को सही साबित कर दिखाया।

बगैर लाग लपेट के सहज ढंग से नारी अंतर्मन की पीड़ा व उनके अंदर चल रहे हाहाकार की सहज अभिव्यक्ति पूरे शहर के रचनाकारों के बीच चर्चा का विषय बन गई। ऐसा काव्यमय गद्य लिखना सब के बूते की बात नहीं। 'सप्तम स्वर' के एक अंक में 'धुआं हुई कविता' शीर्षक से उनकी टिप्पणी छपी। बहुत दिनों तक शहर के बुद्धिजीवियों के बीच उसकी चर्चा होती रही।

स्त्रियों की सृजनशीलता, कल्पना की उड़ानें यथार्थ की पथरीली जमीन से टकराकर किस कदर तार तार हो जाती हैं और सपने, सपने ही रह जाते हैं। इस यथार्थ की एक बानगी कान्ता भाभी की लिखी कविता 'एक सपने की कीमत' में देखी जा सकती है -

मैं
जान बूझ कर उनसे
एक सपना चुरा कर
भाग आयी थी उस दिन
और रख लिया था उसे
सीनों में छिपाकर अपने
पर
पकड़ी गयी थी मैं
दूसरे ही दिन
बस
चुका रही हूं तबसे ही
उसकी कीमत
हर क्षण
हर पत्र
मुट्ठी मुट्ठी भर रेत
उलीच उलीच कर अपने
तमाम बेकसूर अधिकारों पर...
(वह जो नदी है' कविता संकलन से)

यह पुस्तक उन्होंने मधुपुर से भागलपुर के एक मित्र के मार्फत मुझे भिजवाई थी। आज उस पुस्तक को मैं निहार रहा हूं, जिसमें एक पन्ने पर लिखा है -

श्री चंद्रेश को सस्नेह...
कान्ता सुधाकर, 09.04.08

इस पुस्तक को उलटते पुलटते कई पुरानी स्मृतियां एकाएक हरी भरी हो जाती हैं.. जैसे वे भागलपुर स्थित डाक तार कॉलोनी के अपने आवास पर कविता पाठ कर रही हों और हमारे जैसे उनके कई शुभचिंतक श्रोता की तरह उन्हें ध्यान से सुन रहे हों।

घर की तमाम जिम्मेदारियों, दुश्वारियों के बीच किस तरह एक महिला अपने सपने को पानी के बुलबुले की तरह बनते, बिगड़ते देखती है और इन्हीं परिस्थितियों के बीच सपने आकार भी ग्रहण करते हैं। कान्ता भाभी स्वयं इसका उदाहरण थीं। उनके लेखन में कहीं कोई शोर नहीं, कोई बड़बोलापन नहीं, एक गम्भीर मौन व्याप्त होता जो चुपचाप पाठकों से जैसे सीधे संवाद कर रहा हो। जहां स्याह सन्नाटे के बीच एक चिंगारी सी दिखती है, जो कई बार हलचल पैदा कर देती है। लेखन में कम ही लोगों के पास यह सिफत होती है, कान्ता भाभी के लेखन में यह सिफत थी जो उन्हें एक अलग पहचान दिलाती है।

भले ही गुटों में बंटे लेखक समुदाय की नजरों से वे ओझल रहीं, लेकिन अपनी साहित्यिक ईमानदारी व खुद्दारी के साथ उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। कान्ता भाभी ने कम ही लिखा,लेकिन जो भी लिखा सार्थक लिखा और वही लिखा जिसे उन्होंने सिद्दत के साथ महसूस किया। शायद भविष्य में कभी किसी ईमानदार समीक्षक, आलोचक की नजर उनके लेखन पर पड़े और उनका सही मूल्यांकन हो। ■

और नदी बहती है...

डॉ. सुमनलता

पर वही नदी जब समय शारीरिक अक्षमता और गर्दिशों की जमाव को झेलते झेलते थकती है, तो चूक जाती है, सूख जाती है। एक स्त्री का होना प्रकृति का होना है, पृथ्वी का होना है, पृथ्वी का होना है, नदी का होना है, जंगल का होना और पुरुष का भी होना है, क्योंकि स्त्री पत्नी, माँ, बहू और बेटी है। माँ होना स्त्री का उदात्त स्वरूप है तब वह पृथ्वी की धूरी की तरह हो जाती है। तिरिया के सैकड़ों-हजारों नहीं, लाखों नाम हैं। स्त्री ने जन्म लिया है, तो दिया भी है। स्त्री के तमाम स्वरूप और भाव को जीने वाली कवयित्री का नाम है कान्ता सुधाकर।

कान्ता जी मधुपुर कब आई, मुझे ठीक-ठीक स्मरण नहीं या मुझे ठीक से पता नहीं क्योंकि तब मैं भी अन्य कामकाजी स्त्रियों की तरह घर-परिवार, महाविद्यालय और सामाजिक, साहित्यिक गतिविधियों में अति व्यस्त रहती थी। और सच कहूँ तो मुझे उस समय का सामाजिक-सांस्कृतिक मधुपुर भी जीवंत और व्यस्त लगता था। केवल अपने लिए जीने और खुद ही स्वयंभू संस्था हो जाने की प्रवृत्ति तब मधुपुर में नहीं थी। यह चार-पाँच दशक पहले का मधुपुर था। लोग समाज की तरह साहित्य की धारा में जी रहे थे। अग्रसेन भवन में कोई कार्यक्रम था। मैं उद्घोषिका का दायित्व निभा रही थी। समाप्ति पर किसी ने मिलवाया था। एक शांत, सौम्य, मृदुल महिला। सलीके से बंधी सुरुचिपूर्ण साड़ी, माथे पर लाल बिन्दी और होटों पर अपनत्व भरी मीठी मुस्कान। स्नेह बांटती उन आंखों में जैसे एक आमंत्रण भरा था। पता चला दोनों पति पत्नी साहित्यकार हैं। अब मधुपुर में ही बस गए हैं। मुझे लगा जैसे उनसे कोई पुराना रिश्ता है। मन उस आमंत्रण भरे मुस्कान से भर गया और तब से अब तक न जाने कितनी बार, कितने कितने घंटों की हमारी बैठकें चलीं।

एक स्त्री का होना प्रकृति का होना है, प्रकृति का होना है और पुरुष का होना भी है, क्योंकि स्त्री माँ, पत्नी, बहू और बेटी है। माँ होना स्त्री का उदस्त स्वरूप है। तब वह पृथ्वी की धूरी की तरह हो जाती है। मैंने बहुत निकट से कान्ता जी को पृथ्वी की धूरी बने देखा है। यूं तो सुधाकर जी एक सहृदय लेखक, सत्पुरुष, स्नेही पिता और पूर्ण सजग सामाजिक व्यक्ति हैं, किन्तु उनके ये सारे गुण जैसे कान्ता जी स्नेह धागे में पिरोये गए ऐसे नक्षत्र हैं जो कान्ता जी की मधुर ज्योत्सना से सदा जगभग रहे हैं। नारी के सैकड़ों हजारों नहीं लाखों नाम हैं। वह जन्म लेकर पृथ्वी पर आई तो पृथ्वी के ऋण को चुकाने के लिए बच्चों को जन्म दिया भी है। कान्ता जी स्त्री के उसी मातृ स्वरुप की उदात्त चेतना है, जिसने न केवल अपने तीन बच्चों को जन्म दिया, वरन अपने प्रेमी पति की भी जननी सदृश्य संरक्षण में लगी रहीं। यद्यपि अनजाने इस लालन पालन के क्रम स्त्री पुरुष सत्ता का निर्माण कर देती है, क्योंकि स्त्री की कोमलता उसे छाया में रहने को उकसाती रही है और कहना न होगा कि कान्ता जी पूर्ण नारी है, जिस कारण उनके भीतर का कोमल भाव उन्हें प्रकृति चितेरे कवि के रूप में प्रतिष्ठित कर गया और उन्होंने नदी के मातृ स्वरूप का दर्शन कर नदी के बहने का कलकल अपने अंतस से उद्भूत कर पाठक तक सम्प्रेषित किया। मैं ही नहीं मधुपुर के साहित्य प्रेमी इस नदी की स्नेहिल धारा में उब चुभ हुए और स्नेह से आप्लावित भी। इस क्रम में मैं सबसे अधिक दाय की भागी रही और इसे अपना सौभाग्य मानती हूँ।

स्त्री प्यार में शासित होना पसंद करती है। कोमलता के अहसास को, प्यार को शिद्दत से जीकर एक परिवार की रचना कर लेती है। इसी रचना को घेरे की तरह फैलाकर अपने चारों ओर एक बाड़ बना लेती है और खुद उस बाड़े

के भीतर महारानी बनती है, लेकिन जब वही ममतामयी स्त्री कवियित्री मी हो तो यह बाड़ वृहत नहीं वृहत्तर हो जाती है। कान्ता जी के जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनका घेरा जितना बड़ा था, उतना ही मृदुल, कोमल और स्नेहपूर्ण था। मैं अक्सर अपनी शाम उन लोगों के साथ बिताती और कभी-कभी उनकी ज्यादातर अपनी रचनाओं के साथ होती। उन्हें सुनाकर और उनकी स्वस्ति पाकर अपनी रचना को पुरस्कृत मान लेती।

अभी कुछ दिन पूर्व जब उनके घर गई जो मुझे देख इस तरह खुश हुई जैसे मायके से आए व्यक्ति को ससुराल में देखकर कोई ब्याहता होती है। काफी देर तक बातचीत हुई उनके अकेलेपन का दुख जैसे मेरे भीतर समा गया। करीब महीने भर बाद सीमा (उनकी पुत्री) को इसलिए फोन किया वे यहाँ हैं या नहीं, क्योंकि अक्सर ही इलाज के सिलसिले में उनका दिल्ली आना जाना लगा रहता है। सीमा ने कहा आप मत आइए। वे दोनों कहीं आते-जाते नहीं, सो उन्हीं दोनों को आपके यहाँ भेज दूँगी। मैं तो इतनी खुश हुई जिसका ठिकाना नहीं न जाने कितने दिनों के बाद वे दोनों मेरे घर आ रहे थे। हम करीब दो घंटे साथ बैठे, ढेर सारी पुरानी यादों को ताजा करते रहे। जाते समय कान्ता जी ने प्यार से हाथ पकड़ कहा फिर आयेंगे। सुधाकर जी ने मीठी फटकार लगाई- 'तुम भी मधुपुर का तरीका सीख गई, यहाँ लोग, कभी भी ये नहीं कहते' 'आप भी आइएगा'। और हमारी सम्मिलित हँसी गूंज उठी। उनके व्यक्तित्व का सबसे मोहक रूप यही मोहिनी हंसी थी। मुझे लगता है शायद सुधाकर जी भी इसी मोहिनी हंसी के पाश में सर्वप्रथम बंधे होंगे।

हमारा फिर कभी मिलना नहीं हो पायगा। कभी कभी मन करता है – ''पूंछूं ऐसा झूठा वादा क्यों किया आपने। आपके व्यक्तित्व में यह तो नहीं था।'' जब दो जनवरी को उनके जाने की दुखद सूचना मिली तो अपना वही अंतिम मिलन हो आया। बहुत चाहा सुधाकर जी को फोन कर लूँ पर ऐसा संभव न हो पाया और जब उन्होंने फोन किया तो मेरी समझ में ही नहीं आया कि उन्हें क्या कह कर सान्त्वना दूँ। क्या दुनिया की कोई भाषा कोई शब्द उनके जख्मों पर मरहम लगा सकता है मुझे नहीं लगता उनके हृदय के उस टूटे भाग को किसी भी तरह जोड़ा जा सकता है। फिर भी लगता है जैसे कान्ताजी की अजस्र बहती नदी ही सुधाकर जी सहित सबों के दुख के रेतीले भाग को अप्लावित कर सकेगी। मेरा विश्वास है उनके स्नेह की नदी बहती रहेगी। ■

एक संवेदना से भरी नदी का न होना..

डॉ. उत्तम पीयूष

कान्ता सुधाकर का न होने का मतलब है बहुत सारी नदियों का जलविहीन हो जाना, बहुत सारे परिंदों की चहचहाहट खाम़ोशी में तब्दील हो जाना, बहुत सारे हरे भरे शजर की हरियाली खो जाना..

संताल परगना में निर्मला पुतुल, संध्या गुप्ता, रेणु प्रकाश, डॉ सुमनलता सरीखी बड़ी महिला रचनाकारों के बीच आधी आबादी का पूरा स्वर बन गयी थीं कान्ता सुधाकर..

उन्होंने प्रकृति को छुआ नहीं था – वे खुद़ प्रकृति थीं। आप उनकी रचनाओं के या उनके क़रीब होकर महसूस कर सकते हैं कि धरती की भाषा क्या है, अपने गांव की नदियों का जल कैसे आपके पांव पखारता है उमगता हुआ सबसे पहले..

बग़ैर शोर मचाये जीवन और संपूर्ण परिवेश की आत्मीयता को जिस सहजता से कान्ता सुधाकर व्यक्त करती हैं अपनी कविताओं में – दूर तलक वह असर पैदा करता है –

''नदी
वेगवती नदी
जो बनाती है
रसवंती,
वह एक औरत
होती है नदी।''

कविता संग्रह ''वह जो नदी है'' बार बार पढ़ कर बार बार पढ़ने को जी चाहता है और पढ़ने से अधिक अक्षर अक्षर को हृदय के लिविंग रूम में साट देने का मन करता है।

कान्ता सुधाकर की कविताएं बाज़ार व्यवस्था से, बनावटीपन से, मिथ्या प्रदर्शन से नाखुश हैं। उन्हें सहजता, सरलता और स्वाभाविकता पसंद है। यही वजह है कि कान्ताजी कहती हैं-

''अच्छा है
बहुत अच्छा है,
कि बादल बिकता नहीं
किसी बाज़ार में।
अच्छा है
बहुत अच्छा है,
कि धूप
कभी टिकता नहीं
किसी परदेसी के प्लान में।''

कभी भागलपुर के सांस्कृतिक बुलेटिन 'सप्तम स्वर' की स्तंभ लेखिका रांची/ मधुपुर से प्रकाशित 'आधी दुनिया' की संपादक रहकर कान्ता सुधाकर दिलों को मुलायम करते आलेख लिखती रहीं। आधी दुनिया के उनके लिखे संपादकीय आलेखों को संकलित करने की ज़रूरत तो है ही।

'आस्था' (निवास स्थल) में अब मुस्कुराती हुई कान्ता भाभी से मिलना संभव नहीं हो पाएगा पर उनकी कविताओं और उनकी चाय के फ्लेवर का असर ताज़िंदगी रहेगा। कविता संग्रह की अंतिम कविता से हम उन्हें फिर से पढ़ने जीने का नवारंभ कर सकते हैं-

''आज
जब पर्दा गिरने वाला है
मैं चाहती हूं आज
लिखना
एक कविता
खूब़ लम्बी
और अंतिम कविता।''

एक स्त्री के पास जितना एकांत, जितना भरोसा, जितना प्यार, जितना इंतज़ार और जितनी क़रीबियत होनी चाहिए - वह सब कान्ता सुधाकर की कविताओं में इकट्ठे है।

कान्ता सुधाकर की रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य के बीच कई और कई स्तरों की यात्राएं हैं। और अलहदा सौंदर्य यह है कि लगभग सारी रचनाएं आखरि में प्रेम को, मनुष्यता को और अपनत्व को 'डार्क एंड डीप' करती हैं।

एक स्त्री की तरह भी और उस शख्स की तरह भी जो उन्हें प्यार करता है। कान्ता सुधाकर के शब्द कविताओं में जीवन के सुगंध और अपनत्व को मरुथल बनते समय में सींचते हैं, उसे हरा भरा करते हैं वह भी बिना मोल लिए.. वे बांटती हैं अभिनव क्षण..

अल्टीमेटली कान्ता सुधाकर जितना प्यार मांगती हैं नदियों से, पेड़ों से, चिड़ियों से, आकाश से, मां से, नदियों, पहाड़ों से, तुमसे... उससे कहीं अधिक प्यार देना चाहती हैं...

बस... उनकी यात्राओं में शब्दों से ज़्यादा तेज़ चलती हैं कि उनकी संवेदनाएं जो बेसिकली उनकी रचनाओं को सख्त, नो इंट्री वाली आत्माओं में भी आसानी से प्रवेश करा देती है। ■

(लेखक साहित्यकार और सामाजिक कार्यकर्ता हैं)

कान्ता सुधाकर : एक अनमोल शख्सियत

धनंजय प्रसाद

कान्ता सुधाकर सुशील, विनम्र मृदुभाषिणी, विदुषी, ममतामयी लेखिका जैसी अनमोल शख्सियत का अचानक हमारे बीच से चली जाना हमारे लिए एक दुःखद और मार्मिक घटना है। उन्हें हम कभी भी भूल नहीं सकते। जब कभी स्त्री विमर्श पर बातें होगी उनकी उपस्थिति हम महसूस करते रहेंगे।

जब सुधाकर भैया और भाभीजी भागलपुर में निवास कर रहे थे, उन दिनों 'कला केन्द्र' के साथियों से उनके संदर्भ में चर्चा होती रही, पर वहां मिलने का अवसर कभी प्राप्त नहीं हुआ। मधुपुर प्रवास के बाद उनसे करीब से मिलने, जानने, समझने का मौका मिला। अपने अंदर बहुमुखी प्रतिभा को समेटे हुई एक अनमोल शख्सियत थी। उनके अंदर एक लेखिका व कवियत्री से भी बड़ा कदर इंसानियत की रही, जिसका कायल हुये वगैर कोई भी नहीं रह सकता था। एक लेखक व कवि की रचना पढ़ने के बाद लोग उनके विचार व रचना के मर्म से वाक़िफ होंगे पर आचार, विचार और व्यवहार ही इंसानियत की सबसे बड़ी पूंजी है। ये उनमें कूट-कूटकर भरा था। अगर उनकी रचनात्मकता के संदर्भ में संक्षेप में कहें तो वो अपने अंदर सम्पूर्ण रचनाकार के गुणों को समेटे हुई थी और मूलतः महिला विमर्श की प्रतिनिधित्व करती रही। उनकी कहानियां व कविताओं में भी ये बातें परिलक्षित होती हैं। वे समसामयिक घटनाओं व परिस्थितियों पर कलम चलाते हुए नजर आती हैं। उन्होंने महिला विमर्श को अपनी लेखनी का आधार बनाया। उनकी रचनाओं में खासकर महिलाओं के दुख-दर्द, पीड़ा, विवशता, घुटन, उपेक्षा, प्रताड़ना, विस्थापन, पलायन, आदि का दंश का चित्रण देखने को मिलता है। उनकी कविता संग्रह – 'वह जो नदी है' और कहानी संग्रह – 'अपना सच', में प्रकाशित कविताएं व कहानियों में साफ परिलक्षित होती है। उन्होंने करीब एक दशक तक 'जुड़ाव' द्वारा प्रकाशित पत्रिका – 'आधी दुनिया' का संपादन की। उस पत्रिका के माध्यम से भी उन्होंने महिला अधिकार के सवालों को उठाती रही तथा महिला विमर्श की रचनाओं को समावेशित करती रही।

वह एक बेहतर कहानीकार व कवियत्री तो थीं ही एक बेहतर इंसान, इंसानियत को जगाने वाली एक ममतामयी मां भी थीं। कहने को तो बहुत बातें की जा सकती है पर फिलहाल संक्षिप्त में इतना ही। ■

कविता जैसी कान्ता भाभी

प्रकाश देवकुलिश

कान्ता भाभी अर्थात कान्ता सुधाकर को याद करते ही कलेजे में हूक सी उठती है, यह हूक लगभग तीस साल के अन्तराल की है, जिस अन्तराल को मैं इस बीच एक बार भी मधुपुर जाकर तोड़ न सका, और भाभी की उस स्नेहिल, अपनापा समेटती हँसी से एक बार अपने को भींगा न सका।

सुधाकर भैया और कान्ता भाभी के मधुपुर जाने के बाद एक बार भी भेंट न हुई, मैं आकाशवाणी के कोलकाता, हजारीबाग, राँची केन्द्रों में, परिवार में व्यस्त रहा और भागलपुर में हमलोगों की अन्तरंग मुलाकातें, पारिवारिक मेल जोल, साहित्यिक, आत्मिक चर्चाएँ, कविता, कहानी की बैठकी, आकाशवाणी भागलपुर में रिकार्डिंग सब स्मृतियाँ बनी रहीं।

मेरी स्मृतियों में कान्ता सुधाकर और कान्ता सुधाकर की कविताएँ एक साथ आती हैं, जैसे कान्ता सुधाकर व्यक्ति के साथ वे कविताएँ ही हों, जिन्हें वे लिखती रहीं। अपनी कविताएँ जैसी ही वे शान्त, सरल, उदार थीं पर अन्दर समेटे वैसी ही दृढ़ता, दृष्टि की साफगोई और एक सुलगती आग। आग जो कुरीतियों को, असंगतियों-विसंगतियों को खाक कर डालना चाहती हो, जिसके अन्दर विडम्बनाओं से समझौता न करने का माद्दा हो पर जिसमें उपयुक्त स्थल के लिए नरमी, स्नेह, अपनेपन की धारा बहती हो।

कान्ता भाभी और सुधाकर भैया से मेरी मुलाकात मेरे मित्र और हिन्दी कविताओं को स्वर देने वाले प्रसिद्ध गायक अजय राय ने करवाई थी। तब मैं आकाशवाणी भागलपुर में कार्यरत था। ये परिचय भागलपुर में एक साथ किए गए सांस्कृतिक कार्यक्रमों और रंग-गतिविधियों के कारण निकटता में और निकटता पारिवारिक अपनेपन में तब्दील होती गयी। मेरी पत्नी रेणु उपाध्याय से भी इनकी अलग से काफी निकटता थी, बल्कि मेरे एक रंग नाटक में वाचन के लिए रेणु को इन दोनों ने ही लाया था। तब मैं और रेणु वैवाहिक बन्धन में नहीं बंधे थे। यह बात लगभग 1984-85 की है। 'सुपरकैट्स' नामक संस्था के कार्यक्रमों में हम सब एक साथ शामिल होते। एक पत्रिका भी निकाली गई थी जिसके सम्पादक सुधाकर भैया और बहादुर मिश्र थे। भागलपुर के प्रसिद्ध नेत्र चिकित्सक डॉ हर्षवर्द्धन और भारत बुक डिपो के मालिक इस संस्था के संरक्षक, अध्यक्ष थे। क्रिकेट खेलने वाले और सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियों में रुचि लेने वाले युवा सचिव तथा सदस्य थे।संस्था के वार्षिकोत्सव में हम अन्य कार्यक्रमों के अतिरिक्त कहानी की रंग प्रस्तुति करते। हृषीकेश सुलभ की कहानी 'बड़े राजकुमार' और उषा प्रियम्वदा की कहानी 'वापसी' का मैंने नाट्य प्रस्तुति के लिए आलेख तैयार किया था तथा निर्देशन भी। कई रूप-रेखा, योजनाएँ, सुधाकर भैया के घर पर बनतीं। आशीर्वाद जैसी मुस्कुराहट और हँसी के साथ कान्ता भाभी के हाथ की चाय मिलती और मिलता स्वादिष्ट नाश्ता। इन सब के साथ और कई बार अलग से भी सुधाकर भैया की कहानियाँ और भाभी की कविताएँ सुनी जातीं।

कान्ता सुधाकर की कविताओं में परिन्दे, पौधे, शिशु, आकाश, चाँद, तारे, बदली, मानव मन की पहेलियाँ, सम्बन्धों की मधुरता, जिन्दगी के उतार-चढ़ाव, अनेक बिम्ब लिए आते हैं और कविता के साथ साथ कान्ता सुधाकर को भी परिभाषित कर जाते हैं। सत्य – सुन्दर और शिव अर्थात कल्याणकारी तो होता ही है, शान्त भी होता है – एक दृढ़ता और मजबूती लिए शान्त। कैसी होती है वो शान्ति – कान्ता सुधाकर के व्यक्तित्व

और उनकी कविताओं में देखी जा सकती है। इसलिए उनमें कोई शोर-शराबा नहीं, कोई नारेबाजी नहीं लेकिन सच के स्थायित्व और टिके रहने के भाव का बोध है। आज स्मृतियों में लौटता हूँ, उन्हें याद करता हूँ तो ऐसे ही चित्र गड्ड-मड्ड होते हैं।

तब मैं आकाशवाणी के कार्यक्रमों और रंग गतिविधियों में ज्यादा सक्रिय था। कविताएँ नहीं लिख रहा था। हाँ, लगता जरूर था कि मुझे कविताएँ लिखनी हैं। इधर जब मेरी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगी तो मंसूबे बांधता रहा कि मधुपुर जाऊँगा, कान्ता भाभी और सुधाकर भैया को कविताएँ सुनाऊँगा, उन्हें जरूर अच्छा लगेगा। पर परिन्दों को कविताओं में शामिल करती कान्ता सुधाकर स्वयं परिन्दा बन उड़ गईं। मेरे हाथ में मेरा काव्य संकलन है – 'असम्भव के विरुद्ध' जो उनके हाथों में नहीं दिया जा सका। दे पा रहा हूँ तो बस श्रद्धांजलि। ■

कान्ता भाभी को शब्दांजलि

घनश्याम

वह धरती मां थीं
जिस पर कलकल छल छल बहती थीं नदियां
जिस पर उगे हैं पेड़
असंख्य रंग बिरंगे पेड़
नदी महज नदी नहीं होती
महज जल का समुच्चय नहीं
नदी मां होती है – हमारी, आपकी और संस्कृति की भी
जिसमें मछलियों का झुंड अठखेलियां करता है
जिसमें घोंघली जीवन तलाशती है
जलचर जलोद्यान बनाते हैं
ऐसी थी वह मां! हमसब की भाभी मां!!
वह धरती मां थीं
जिसके उदार, वृक्ष और गोद से
उगे थे सैकड़ों पौधे –
कविता के, संवेदना के और रचना के
जिनके समक्ष पतझड़ भी बसंत हो जाते थे
जिनकी स्नेहिल भावनाएं पतझड़ को भी
बसंत की तरह खिलखिलाने की कूबत रखती थीं।
ऐसी थी हमारी तुम्हारी वह भाभी मां
जो पंचतत्व में समाहित हो गईं
जो नदी में समा गईं
बन गईं नदी की धार
वह धरती मां थीं
जो असंख्य पेड़ों की टहनियों में फुनगती हुई
जंगल बन गईं
धरती मां जंगल बन गईं
आखिर मां ही तो सबकुछ होती है
नदी, पेड़, जंगल और धरती भी
जिसकी पयोधनि से
पल्लवित, पुष्पित हो
पयोधरा बनती है दुनिया।
कान्ता भाभी को शब्दांजलि ! ■

[कान्ता भाभी की आकस्मिक मौत के बाद 2 जनवरी 2022 की शाम श्मशान घाट से लौटने के कुछ देर बाद – मेरे कुछ शब्द]

कान्ता सुधाकर यानी इंदिरा मिश्रा : एक गुमनाम कविता थीं

श्रावणी

नव वर्ष का आगमन किसी के लिए हर्ष भरा होता है तो किसी के लिए विषाद। 'आधी दुनिया' परिवार के लिए भी इस वर्ष का पहला दिन काफी दुःखदायी रहा। वर्ष के पहले ही दिन यानी 1 जनवरी 2022 को ही 'आधी दुनिया' पत्रिका की पहली संपादक 'कान्ता सुधाकर' हमें छोड़ कर चली गई। सुबह जब हमें यह मनहूस खबर मिली तो एकाएक विश्वास नहीं हुआ, पर होनी को कौन टाल सकता है। जन्म और मृत्यु दो ऐसी स्वाभाविक क्रियायें हैं जो मनुष्य के जीवन को गहराई से प्रभावित करती है। तभी तो फिल्म 'अपनापन' में गीतकार ने अपने गीत में कहा है–'आदमी मुसाफिर है आता है और जाता है आते-जाते रास्ते में यादें छोड़ जाता है।' कान्ता सुधाकर यानी आंटी भी वैसी ही शख्सियत थी। उन्होंने भी अपने जीवन काल में उनके साथ रहने वालों के लिए सुखद अहसास/यादों को छोड़कर चली गई।

आज जब वह हमारे बीच नहीं है तो उनके साथ बिताये गये पल आंखों के सामने चलचित्र की भांति उभर रहे हैं। उनसे रिश्ता महज 'आधी दुनिया' पत्रिका के संपादक की हैसियत से नहीं था बल्कि एक अभिभावक और बच्चे का रिश्ता जिस तरह का होता है वैसा था। मैं उन्हें आंटी कहती थी। उनसे मेरी मुलाकात मधुपुर में हुई। दिन और वर्ष ठीक से याद नहीं, पर इतना याद है कि जाड़े का मौसम था। उनलोग भागलपुर से मधुपुर सभी सामान के साथ आये थे। 'जुड़ाव' में ठहरे थे। मैं जब 'जुड़ाव' गयी तो घनश्याम दा ने उनसे परिचय करवाया। कुछ दिनों तक हमलोग सभी-साथ ही 'जुड़ाव' में रहे। खाना भी सभी का साथ ही बनता। फिर वे लोग अपना घर खरीदकर वहां रहने चले गये। उनके जाने के पश्चात कुछ दिनों तक खाली-खाली लगा। चूंकि उन्होंने मधुपुर में ही घर खरीदा था तो हमलोग प्रायः उनके वहां जाते ही रहते थे। 'जुड़ाव' में जब उनके साथ रहते थे तब लगता ही नहीं था कि उनसे परिचय तो अभी-अभी हुआ है। लगता था हम सभी एक ही परिवार के हैं।

मधुपुर में जब मैं रह रही थी कोई भी पर्व त्योहार हो, उनके वहां जाकर भोजन करना जैसे हम सबों का जन्म सिद्ध अधिकार था। पर्व त्योहार के अलावा भी किसी न किसी बहाने हम उनके यहां खाने पहुंच ही जाते थे। वह भी बड़े प्रेम से हमें खिलाती। तरह-तरह का खाना बनाना एवं उसे दूसरों को खिलाना उनका शौक था। मधुपुर में जितना दिन रही उनके वहां नियमित आना-जाना लगा रहा। रांची में रहने के कारण जब मधुपुर जाती तब ही उनसे मिल पाती। इधर मधुपुर जाना कम हुआ, उनसे मुलाकात भी कम होने लगी। इस पर वह कहती – ''बिना बैठक या कार्यशाला के मधुपुर आओ और 'आस्था' में आकर रहो।'' आस्था उनके घर का नाम है। मेरे बच्चे भी जब कभी मधुपुर जाते और उन्हें अच्छा कुछ खाने को मन करता वे कहते – 'आस्था चलो वहां मनपसंद नाश्ता मिलता है।'

एक बार वह डाल्टनगंज किसी रिश्तेदार के यहां शादी में जा रही थी। उसी समय वह हमारे घर रांची में आई। घर एवं बच्चों को देखकर इतना खुश हुई जैसे कि एक मां अपनी बेटी के बसाये घर को देखकर होती है। बार-बार बोलती तुमलोगों का घर गृहस्थी देखकर अच्छा लग रहा है कि तुम लोग ठीक-ठाक रह रहे हो। यह देखकर मन को असीम शांति मिल रही है।

वह कवयित्री थी। उनकी कविताओं में प्रकृति (पहाड़, नदी, जंगल, जमीन), उनके साथ इंसान का रिश्ता, पारिवारिक रिश्ते, प्रेम एवं वेदना सभी सम्मिलत होते थे। इतनी अच्छी कवयित्री होने के बावजूद उनका व्यक्तित्व एकदम साधारण था। परिवार के हर रिश्तों (बेटी, पत्नी, मां) के साथ उन्होंने न्याय किया। किसी को कोई भी शिकायत का मौका कभी नहीं देती थी।

उनको जानने वाले एवं चाहने वाले उन्हें कान्ता सुधाकर के नाम से जानते थे पर उनका वास्तविक नाम इंदिरा मिश्रा था। यह बात हमें उस समय पता चला जब उनका आंख का ऑपरेशन रांची के कश्यप मेमोरियल आई हॉस्पिटल में हुआ था। हमलोग उनसे मिलने गये। अस्पताल में पूछताछ के क्रम में पता चला कि कान्ता सुधाकर नाम की कोई महिला यहां भर्ती नहीं है। बार-बार हम यही पूछते अस्पताल प्रबंधन का जवाब नहीं में होता। तब हमलोगों ने कहा कि वह मधुपुर से आई है तब जाकर अस्पताल वालों ने कहा कि हां एक महिला मधुपुर से आई है। उनका ऑपरेशन भी हो चुका है, पर उनका नाम इंदिरा मिश्रा है। उनसे मिलना संभव हो पायेगा या नहीं इसी सोच में हम डूबे थे कि उनका छोटा बेटा पप्पू सामने से आता दिखा। हमने कहा कि हम आंटी से मिलकर उन्हें ले जाने आये हैं। पर उनके नाम का तो कोई यहां है ही नहीं। तब उसने हंसकर बताया कि मां यहां इंदिरा मिश्रा के नाम से एडमिट है। उसका वास्तविक नाम इंदिरा मिश्रा है। उस दिन जाकर हमें उनके वास्तविक नाम का पता चला।

उनके साथ बिताये क्षणों को याद कर उन्हें लिखने बैठूं तो एक किताब बन सकती है। पर मन को कहीं तो विराम देना पड़ेगा। उनके साथ बिताये क्षणों को याद करने पर मन को शांति मिलती है सकून मिलता है। उन यादों को संजोकर रखूं, उन्हें बार-बार याद करूं, यही उनके प्रति मेरी सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ■

अजातशत्रु थीं कान्ता भाभी

ललन

उनकी स्नेहमयी मुस्कान और वात्सल्य से भरपूर खिलखिलाहट पहली बार में ही न भूले जा सकने वाली याद बनकर रह जाती थी। जब कोई माँ अपनी ही बेटी के ससुराल के संत्रास पूर्ण माहौल से बचा कर ला पाई हो, छोटी सी मासूम नतनी को बाहों में भर कर सुरक्षा-संरक्षा को आश्वस्त कर रही हो – वैसे में उनसे पहली बार मिलना हुआ था। कान्ता भाभी! हाँ, उन्हें सभी भाभी ही कहते थे – भागलपुर के सभी साहित्यकार, कवि, पत्रकार, संस्कृतिकर्मी, सामाजिक कार्यकर्ता-सबको उनका सानिध्य प्राप्त था! कान्ता भाभी और सुधाकर भैया! हर सजग नागरिक जो सामाजिक संस्कृतिक चिंतन व कर्म में लगा था इस चर्चित दम्पत्ति के घर में आना जाना था। आकाशवाणी भागलपुर तब सबके दैनिन्दिन जीवन का हिस्सा हुआ करता था। आकाशवाणी से जुड़े अधिकारी कलाकारों की भी प्रिय भाभी थीं स्व. कान्ता सुधाकर।

ऐसे ही मौके पर मुझे कान्ता भाभी से मिलने का अवसर मिला था उनकी सहजता और खिलखलाहट पूर्ण स्वागत का अंदाज कभी न भुलाई जा सकने वाली याद है।

कान्ता भाभी, सुधाकर दा के साथ अमूमन साये की तरह रहीं और सुधाकर दा ने भी उन्हें उनके अंतिम सांस तक निबाहा। यह प्रेम, दाम्पत्य और सन्तति के वात्सल्य पूर्ण पोषण, संरक्षण का अद्भुत नमूना रहा जिसे भाभी के बिना अब आगे चलना है। भाभी की अनुपस्थिति की टीस समझी जा सकती है पर उनके आवास के वातावरण में उनकी खिलखिलाहट की उपस्थिति सदा मौजूद रहेगी। जिन्हें भी उनका प्रेम, स्नेह, वात्सल्य महसूसने का अवसर मिला। वे स्मृतियों से उन्हें कभी मिटा पायेंगे, मैं यह यकीन नहीं कर सकता। वे अजातशत्रु का जीवन जीयीं। हालाँकि परिवार ने अनेकों झंझावात झेले, पर वे ज्यादा परिस्थिति जन्य थे। समय के साथ वे मिट गए और नया संतुलन, सामंजस्य होता गया।

"उनके आवास के वातावरण में उनकी खिलखिलाहट की उपस्थिति सदा मौजूद रहेगी। जिन्हें भी उनका प्रेम, स्नेह, वात्सल्य महसूसने का अवसर मिला। वे स्मृतियों से उन्हें कभी मिटा पायेंगे, मैं यह यकीन नहीं कर सकता। वे अजातशत्रु का जीवन जीयीं।"

भागलपुर में पीछे छूटे 'अपने' उनके मधुपुर, देवघरवासी होने पर भी उनके बने रहे और मधुपुर में भी अपनत्व का ऐसा वातावरण बना कि यह परिवार वहीं का हो गया। और कान्ता भाभी इन सबकी धुरी रहीं। बेटे बेटी को समान अवसर और उनकी स्वतंत्रता की हिमायती कान्ता भाभी 'सिद्धान्त का व्यवहारिक रूप' थीं। उनकी कवितायें इस रूप को बेहतर स्वर देतीं – उनके शब्द और बिम्ब इतने सहज थे कि हृदय को छूकर विचारों को अपना बना लेने की प्रबलता स्पष्ट प्रतीत होती। उन्होंने कविता से अपने लगाव की वजह से अपने बड़े पुत्र के लिये सम्भावनाशील कवियत्री को पसन्द किया। दूसरी पुत्रवधु दूसरे बेटे की पसंद की चित्रकार दोस्त – जिसे भाभी ने तुरंत गले लगाया। भाभी के इर्द गिर्द देश समाज को अन्याय मुक्त करने की चाहत वाले साहित्य संस्कृतिकर्मी सक्रिय लोग व समूहों का जमावड़ा रहा पर वे कभी क्लिष्ट दर्शन की भाषा में न लिखती थीं, न बोलने में यकीन करतीं। स्त्री के सम्यक स्वरूप को उनसे ज्यादा कम ही लोग जानते समझते होंगे क्योंकि उन्होंने पूरा जीवन वैसा ही ढाल लिया था। वह जीवंत पाठशाला अब नहीं है। मन कैसा कैसा होने लगा है, पर 'वे' हैं – यहाँ ढाढ़स भी रहेगा! ■

बहती नदी-सी एक कविता थीं कान्ता सुधाकर

वीणा वर्मा

मैं 'जुड़ाव' संस्था से 2003 में जुड़ी। 'जुड़ाव' में काम करने के दौरान साथी के रूप में सीमा जी से मुलाकात हुई। मेरी और सीमा जी के बीच अच्छी दोस्ती हो गई। एक-दो बार सीमा जी से मिलने उनके मधुपुर स्थित आवास पर गई थी। जहां उनकी मां कान्ता सुधाकर जी से मेरी मुलाकात हुई। जब वह बात करती थी तो उनकी वाणी की मिठास कानों में संगीत की तरह सुनाई देती थी। 5 जनवरी 2014 को सीमा जी ने मुझे अपने घर पर बुलाया। उन्होंने कहा कि घर पर कवि गोष्ठी हो रही है। तुमको कविता में रुचि है, अतः तुम मेरे घर आ जाना उनके घर पहुंची तो पता चला कि उनके पिता के पुराने मित्रगण जो बिहार से हैं उन लोगों के द्वारा कविता पाठ किया जाना है। सीमा जी के पिता सुधाकर मिश्रा की नई किताब पर भी चर्चा हुई। कान्ता सुधाकर ने जब अपनी कविता सुनाई तो आश्चर्य से मैं उनकी ओर देखती रही। उनकी कविता और उनकी आवाज मेरे मन और हृदय को सुकून दे रही थी। उस समय मैंने कान्ता सुधाकर जी को एक कवियत्री के रूप में जाना।

मैंने भी एक कविता का पाठ किया। जब गोष्ठी खत्म हुई तो कान्ता सुधाकर जी ने मुझे एक पुस्तक भेंट की। पुस्तक का नाम है 'वह जो नदी है' किताब के पहले पन्ने पर मैंने 5.1.2014 का डेट तुरंत लिख डाला था कान्ता जी की कविता संग्रह की पुस्तक 'वह जो नदी है' जिस पर जिसे मैंने घर आकर पूरा पढ़ा फिर किताब को अलमारी में रख दिया। जब 2022 की जनवरी की रात में उनकी मृत्यु हो गई, उनसे मुलाकात की घटानायें आंखों के सामने घूमने लगे। चाह कर भी मैं उनके अंतिम दर्शन करने नहीं जा पाई, क्योंकि मैं अपनी बीमार मां को छोड़कर नहीं जा सकती थी। अतः मन मसोस कर रह गई। इस बार का 'आधी दुनिया' का अंक उनपर केन्द्रित होगा। यह बात सीमा ने मुझे बताया और मुझे भी कुछ लिखने को कहा। तब मुझे उनकी दी हुई पुस्तक 'वह जो नदी है' की याद आई। मैं पुस्तक ढूढ़ने लगी। पुस्तक मिल गई। जैसे ही मैंने पुस्तक का पहला पन्ना पलटा, मेरी आंखों से आंसू बह निकले, क्योंकि जब मुझे उन्होंने पुस्तक दी थी तब पुस्तक के पहले पन्ने पर माँ कान्ता सुधाकर ने मेरे लिए कुछ लिखा था। वो शब्द है – 'वीणा को स्नेह'। यह वाक्य पढ़कर मैं अपने अंदर उनके स्नेह को महसूस किया। मेरे रोम-रोम में स्नेह की लहर दौड़ गई। पढ़कर मुझे सुखद अनुभूति हुई। मैं एक बार फिर उनकी कविता पढ़ने लगी।

उनकी कविता प्रकृति पर आधारित है जिसमें 'नदी, पेड़, धरती, निर्झर और समुद्र है। आटा गूँथती औरत कैसे अतीत में खो जाती है। परंपरा के नाम पर अपनी पूरी जिंदगी पुरुषों की सेवा में समर्पित कर देती है। कैसे लड़कियों की पढ़ाई को बंद कर दिया जाता है। कविता की अंतिम पंक्ति में वे मुकाबला करने के लिए प्रेरित करती है। उनकी कविता प्रेरणा स्रोत है। 'वह जो नदी है' पुस्तक की अंतिम कविता है का शीर्षक आज की एक अंतिम कविता है, जो बहुत ही मार्मिक है। उनके व्यक्तित्व के बारे में जब मैं सोचती हूं तो मुझे लगता है कि जितनी शांत और मधुर स्वभाव की थी उतना ही उनके अंदर मन में तूफान चल रहा होगा। समाज में महिलाओं के प्रति हो रहे अन्याय के प्रति विद्रोह का भाव था। अपनी बेटी पर हुए अन्याय के खिलाफ भी उन्होंने आवाज उठायी और हर कदम पर उन्हें सपोर्ट किया। उनका पूरा जीवन प्रेरणा स्रोत है। इतनी बड़ी हस्ती होने के बावजूद वह सामान्य जीवन जीती थी। उनके जीवन में दिखावा नहीं था। मेरे लिए उनका यह जीवन अद्‌भुत और आश्चर्यजनक है। ■

मां तो मां होती है

अनीमा

जब मैं बहुत छोटी थी, तभी मेरी नानी गुजर गई। मैं अपने से बड़े लोगों के प्यार से भी वंचित रही जो लोग मुझे प्यार में बिगाड़ सकते थे। मैं कभी भी अपनी प्रशंसा के शब्द सुनने की आदि नहीं रही। यदि कोई तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है तो उसका अर्थ ही है कि तुम्हारे लिए कोई काम की प्रतीक्षा कर रहा है। जब मैंने मधुपुर की 'संवाद' संस्था में काम करना शुरू किया वहां मुझे सीमा जी मिली। फिर मैं उनसे मिलती रही। संयोग से हम दोनों के लिए कार्य व्यवस्था भी एक ही कमरे में हो गई। एक बार होली में सीमा जी ने मुझे अपने घर पर आने के लिए आमंत्रित किया। वहां मैं सीमा जी के मां बाबा से मिली। मेरे मन में पहला प्रश्न था कि मैं उनसे किस प्रकार मिलूँ। उन्हें क्या कह कर संबोधित करूं? फिलहाल तो सीमा जी की तरह मैं भी उनको मां बाबा ही कहने लगी। उसके बाद में उनके घर आने जाने लगी। एक दिन माँ अचानक बोली तुम्हारी लंबाई तो बहुत अच्छी है। मैंने उनसे कहा – 'अच्छा आप मुझसे क्या काम करवाना चाहती हैं? तुम यह क्यों पूछ रही हो? उन्होंने कहा – 'लोगों के पास कोई काम रहता है तब इसी तरह कहते हैं।' मैंने कहा – 'नहीं बेटी मुझे तुमसे कोई काम नहीं करवाना है।' यहां आस-पास तुम्हारे जैसी अच्छी लंबाई वाली लड़की सामान्य रूप से नहीं दिखाई पड़ती है न इसलिए माँ ने मुस्कुराकर कहा। मेरी आंखें भर आई। मैंने किसी तरह अपने आप पर नियंत्रण पाया कि इस तरह की बातें जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। काम करने के दौरान इस तरह की बात शायद ही कभी किसी से सुनाई देती है। माता-पिता से इतने दिनों तक दूर रहने के बाद इस तरह की प्रशंसा सुनने को शायद ही कभी मिली। मैं सदा अकेलापन और खाली-खाली ही महसूस करती रहीं। जीवन में आगे बढ़ने के लिए कभी-कभी इस

तरह के प्रोत्साहन की जरूरत पड़ती है और ठीक वैसे ही समय में मुझे वह मिला। बाद में हमने एक साथ बैठकर खाना खाया। यह मेरा ही प्रस्ताव था कि हम एक साथ बैठकर खाना खाएं, पर मां बोली कि ठंडी पूरी खाने में अच्छी नहीं लगती है तो मैं गरमा-गरम बनाऊंगी और तुम लोग खाओगे, बाद में मैं खा लूंगी। इससे मुझे अचानक अपनी मां की याद आ गई। तब मैंने जाना कि मां तो मां होती है। उस दिन मुझे कसकर खाना पड़ा मां के प्यार से। मां ने प्यार से डाटती हुई बोली कि तुम्हारी लंबाई इतनी अच्छी है और तुम खाती इतना कम हो। इतने कम से काम नहीं चलेगा। दो तीन पूरी और खानी पड़ेगी। मैंने सोचा अब क्या करना चाहिए? अभी मेरे सामने दूसरी चीजें भी थी, पर उस दिन मैंने इतना कसकर खाया कि रात में कुछ भी खाने की जरूरत नहीं पड़ी। किसी दूसरे के द्वारा बिगाड़ी जाने का एहसास भी जीवन में ऊर्जा देता है ऐसा पहली बार समझ में आया था।

उस दिन के बाद से कितनी बार मिली। लेकिन यह कहावत है कि पहला प्रभाव अंतिम होता है। वास्तव में मैं मां की डांट, मार्गदर्शन और खुले मन से की जाने वाली बातों को अब बड़ी शिद्दत से याद करती हूं जो मैं केवल अपनी नानी के प्यार में ही पा सकती थी। ■

मुझे एक मां और मिल गयी थी

रुकसार

बचपन से देखती थी घर में बहुत सारे बच्चों को आते हुए। मेरी मां को हमेशा से बच्चों से बहुत लगाव था। उस वक्त मैं छोटी थी। अपनी मां को दूसरे बच्चों को इतना प्यार करते हुए देख मुझे हमेशा से जलन होती थी। आखिर एक दिन मेरी जलन हद पार कर गई और मैंने कुछ गुस्से में जाकर मां से पूछा कि मां तुम्हारा बच्चा तो मैं ही हूं फिर दूसरे बच्चे को इतना प्यार क्यों करती हो? मां ने हंसकर कहा कि मां तो सिर्फ मां होती है, फिर बच्चा चाहे अपना हो या किसी और का क्या फर्क पड़ता है? मैं बस कुछ पल के लिए चुप रही। बस मां को देखती रही। और करती भी क्या कुछ समझ में नहीं आया। खैर वक्त के साथ इन सब की आदत पड़ गई। अपनी मां को मोहल्ले के बच्चों को प्यार बांटते हुए देखते रहने की, पर मां की कही हुई बात हमेशा मेरे जहन में रह गई। बिना उसका मतलब समझे तब तक मेरी पोस्टिंग मधुपुर में हो गई। हां, कॉलेज खत्म होने से पहले ही मेरी जॉब लग गई। मधुपुर शहर में जो देखा वह बिल्कुल बंगाल जैसा ही था। यहां की मिट्टी, यहां का पानी, हवा, लोगों का व्यवहार बिल्कुल होमटाउन की कमी को महसूस नहीं होने दिया, सिवाय एक कमी के जो कि मां की कमी। जी, हां, मां की कमी शायद कोई पूरी कर भी नहीं सकती था। मां ही सिर्फ पूरा कर सकती थी। इस कमी को मधुपुर में काम करते हुए मेरी दोस्ती सीमा दी से हुई। यह दोस्ती कब परिवार में बदल गई पता ही नहीं चला। एक दिन सीमा जी ने मुझे अपने घर पर बुलाया। उनके घर जाने के पहले मेरे दिमाग में कुछ खास नहीं था। बस ऐसे ही एक सहकर्मी के घर जाने जैसा ही था, लेकिन घर पहुंच कर कुछ ऐसा मिला जो शायद मेरी सोच और उम्मीद से इतर था। जी हां, सीमा जी के घर पहुंचने के बाद मेरी मुलाकात उनके मां बाबा से हुई। एक बुजुर्ग औरत जो हमेशा बंगाली स्टाइल में तांत की साड़ी पहनती है। मांग में सिंदूर और माथे पर बड़ी सी लाल बिंदी लगाती है। पहली नजर में मां को देखकर अजीब सा अपनापन जग गया। ऐसा लगा कि यह मेरे लिए भी यहां बैठ कर इंतजार कर रही थी या फिर शायद मैं ही यहां आई हूं इनको ढूंढने। यह सब सोचते सोचते मैं जाकर मां बाबा से मिली। उनसे घंटों बातें होने लगी। पहले मिलन में ही मुझे पता चल गया था कि मां और बाबा दोनों को कविता और कहानी लिखने का शौक है। बाबा मां की कुछ कविताएं और पढ़कर सुनाने लगे। अपनी कहानियों की किताब को भी बस थोड़ा पास में रख कर रखे थे। शायद उन्हें भी अपनी कहानी सुनने से ज्यादा मां की कविता से प्यार था। उन दोनों के बीच का प्यार साफ झलक रहा था। कविता और कहानी के बीच का प्यार भी था। कुछ पल के लिए जैसे मां की लिखी हुई कविता की दुनिया में वे खो गए। शब्द के शब्द रख रहे थे और मैं मां को देखती हूं उनको और उनके जज्बातों को। दोनों को क्या कह कर पुकारु? क्या है ना जो आज से पहले अपने जन्म दी हुई मां का दर्जा मैंने किसी को भी नहीं दिया था और नहीं देना चाहते थे तो बहुत सोच समझकर पहली मुलाकात में मैंने मां बाबा को अंकल आंटी बुलाया। मां की कविता उनके संघर्ष की कहानियां मुझे इतनी भा गयी कि आस्था के घर में मेरा आना जाना अक्सर होने लगा। मां न सिर्फ कविता लिखती थी बल्कि बहुत अच्छा खाना भी बनाती थी और मेरे लिए खास था उनके हाथ का बना आलू पोस्तो। मैं अक्सर उनके घर आने जाने लगी मां के प्यार की आदत जो पड़ गई थी। हमेशा उनके घर जाकर मां बाबा के साथ खाने बैठती और उनकी कहानी सुनती। अक्सर बाबा से पूछती मां के बारे में, उनकी शादी के बारे

में कविता और कहानी और भी बहुत कुछ। बाबा भी खूब मजे से मां के बारे में बात करते रहते थे। यह सब देखते हुए मां मुस्कुराते हुए कहती थी आप बात करते हैं बातों से पेट भरता है क्या? अब बच्चों को खाने भी दीजिए। मां की बात सुनकर हम हंस पड़ते और खाना शुरू करते थे। मां बाबा के साथ मेरी नज़दीकियां धीरे-धीरे बढ़ने लगी। मेरा संबोधन अंकल आंटी से कब मां बाबा में बदल गया। पता ही नहीं चला। यह क्यों हुआ, कैसे हुआ? आज भी पता नहीं चला और उसकी जरूरत भी नहीं हुई। यह जानने कि क्यों जन्म दी हुई मां को ही मां कहकर पुकारते हैं। मधुपुर में इकलौता कमी जो मुझे लगता था मां का प्यार। वह भी आखिर पूरा हो ही गया। एक दिन बहुत सोचने के बाद हिम्मत जुटाकर मां के घर में आई और मां से एक सवाल किया कि आज भी शायद किसी को पता नहीं उनके घर मेरे आने की वजह में मैं उस दिन चुपके से उनसे पूछ लिया कि आपका बच्चा तो मैं नहीं हूं फिर आप मुझे इतना प्यार क्यों, कैसे कर लेती हैं? उन्होंने अपनी आंखें थोड़ी बड़ी करते हुए बोली अरे यह कैसी बात हुई। मां तो सिर्फ मां होती है और उनके लिए हर बच्चा, बच्चा होता है। इतने बरसों से जो बेमतलब बात से मैं उलझी थी उसे अब समझ में आ गया। अब समझ में आ गया था। मां की कही हुई बात बस एक एक कर मेरे कानों में गूंजती रही और कुछ ना कह पायी। बस थोड़ा सा मुस्कान के साथ उनकी आंखों को देखती रही जिसमें मुझे हमेशा से एक अद्भुत प्यार दिखा था अपने लिए। उनके घर से अपने रूम में लौट आते ही अपनी मां को फोन लगाया। मां गुस्से में थी। उन्होंने पूछा – ''अनजान शहर में इतनी देर तक बाहर क्यों थी और कहां थी?'' मैंने बस धीरे से मां से कहा – ''तुम्हारी बातों का और शब्दों का अर्थ अब मुझे समझ में आ गया है और पता चल गया है मां तो मां होती है। बच्चा चाहे अपना हो या किसी का। आज मुझे एक मां और मिल गई।'' थोड़ी देर के लिए खामोशी छा गई। फोन से कोई जवाब नहीं आया और खामोशी का मतलब तो आप सब समझते है ना किसी भी मां का। ■

माँ

कहां जा पाओगी हमें छोड़कर
हममें तो तुम रहोगी ही ना
हम फिर मिलेंगे
हर बार मिलेंगे
हर जनम मिलेंगे
तुम्हारे बिना हम कहां हैं
माँ

-अनन्त सुधाकर

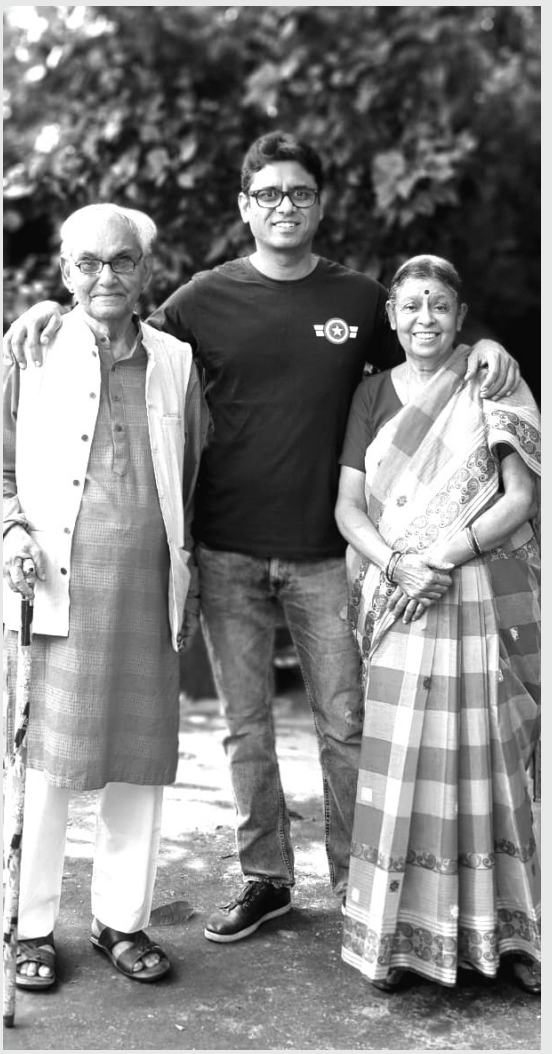

आभार

सीमा

अंग्रेजी तिथि के अनुसार 1 जनवरी को नव वर्ष यानी साल का पहला दिन। और इसी दिन 1 जनवरी 2022 को मैंने अपनी मां को खो दिया। मौत अचानक हुई और हम सभी इस बात से बिल्कुल स्तब्ध रह गए। बिल्कुल अविश्वसनीय, किंतु सत्य कि कुछ देर तक मां हमारे साथ थीं, और अभी नहीं। मानो, घर की नींव हिल गई हो। मां के जाने के सदमे से उबर पाने से हम सबों को कई महीने लग गए।

वैसे तो 'मां' बहुत छोटा सा शब्द है, किंतु अपने आप में संपूर्ण और पूरा संसार है। आज मां नहीं है, तो घर, घर जैसा नहीं लगता। माँ के बगैर घर खाली-सा लगता है। मां ने बहुत ही कम संसाधन में हम सबको बड़ी मुश्किलों से पाला। वे हुनरमंद थीं, जितना अच्छा खाना बनाती थीं, उतना ही अच्छा सिलाई कढ़ाई भी करती थीं। मुझे याद है कि हम लोगों ने काफी समय तक मां के हाथ के सिले कपड़े पहने हैं। उन्हें कढ़ाई का भी शौक था। मौत से कुछ महीने पहले तक उन्होंने सोफा के कवर पर कढ़ाई किया था। घर के तमाम छोटे-बड़े कामों में वे व्यस्त रखती थीं। उपरोक्त बातें बहुत छोटी लगती हैं, लेकिन मां को यह सब करना अच्छा लगता था। कुछ न कुछ रचते रहना उनकी आदत में शामिल था। मां मेरे पिता की बहुत अच्छी जीवनसंगिनी और हमारे लिए बहुत अच्छी मां थीं। वात्सल्य उनके स्वभाव में रचता-बसता था।

अंत में इस पत्रिका के माध्यम से मैं पूरे 'संवाद' परिवार का आभार वयक्त करना चाहती हूँ। 1 जनवरी 2022 की रात मां के गुजर जाने के बाद हम हताश और निराश थे। एक-एक पल हम सब पर भारी पड़ रहा था। इस मुश्किल घड़ी में 'संवाद' के साथी और मोहल्ले के लोग माँ की अंतिम बिदाई यात्रा में जिस तरह शामिल हुए बल्कि तमाम जिम्मेवारियाओं को अपने कंधों पर उठा लिया, मानो उन सब की माँ हो। उस घटना को याद करते हुए उन सबके लिए श्रद्धा से सिर झुक जाता है। आज मैं हर उस व्यक्ति का व्यक्ति का आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने संकट के उस घड़ी में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हमारा साथ खड़े रहे। इनमें से कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनका हमसे कभी कोई संपर्क नहीं रहा। वे भी हमारे साथ खड़े रहे। ऐसे मौके पर खासकर महिलाएं नहीं आती हैं, पर यह माँ का प्यार और स्नेह ही था कि उन सबों को यहां खींच लाया। उन सबों के प्रति मैं एक बार पुनः आभार प्रकट करती हूं। ■

मां का समाजवाद

सीमांत

मां कविताएं और कहानियां लिखती थी, इससे हम वाकिफ थे, लेकिन लिखती कब थी, यह पता नहीं होता था। दिन-भर खाना बनाने से लेकर अन्य कामों में हम उन्हें हमेशा व्यस्त देखते थे। उस पर से हमारा घर खासकर भागलपुर निवास के दौरान संस्कृतिकर्मियों का भी घर होता था। एक बार मैंने मां से पूछ ही लिया कि आखिरकार उन्होंने तमाम कहानियां कब लिखी। मां ने बताया था भागलपुर निवास के दौरान। अधिकतर कहानियां उन्होंने उस समय ही लिखी थीं। उल्टा मधुपुर प्रवास के दौरान बहुत कम ही लिखा। एक बात और उनकी लिखावट का जवाब नहीं है। लेखनी टाइप हुई-सी दिखती थी और उनमें कांट-छांट का चक्कर नहीं होता था। मोतियों सरीखा राइटिंग किसी कम्प्यूटर से टाइप किया हुआ सा, जो एक बार लिख दिया, वही फाइनल। इतना ही नहीं, घर के सामानों की पर्ची की लिखावट, जिन्हें हम बाजार से लाते थे, एकदम सलीके और इतमिनान से लिखे हुए। मां की इस लिखावट से समझ में नहीं आता था कि इस लिखावट पर हम गर्व महसूस करें या अपनी लिखावट पर शर्मिंदगी!

मैंने मां की सभी कहानियों में एक कॉमन बात जरूर देखी। कहानियां छोटी होती थीं। आप उन्हें लघुकथा भी कह सकते हैं, लेकिन मैसेज जरूर होता था। मुझे उनकी कहानियों में 'धुंआ हुई कविता', 'स्नेह दंश', 'अपना सच', 'इन्द्रधनु डूबा हुआ', 'पहला दिन', 'तितलियां', 'उदास गुलमोहर' पसंद थी। देखा जाए तो इनमें से 'धुंआ हुई कविता' में उन्होंने खुद को जीया है। कहानी में कई ऐसे प्रश्न, जो उन्होंने खुद से किए हैं? प्रश्न थे कि क्या एक स्त्री के लिए शादी उसके जीवन का अंतिम पड़ाव है? शादी के बाद पति और बच्चे की देखभाल उसकी तमाम जिम्मेवारियों का निर्वाह करते रहना ही उसकी जिंदगी है? शादी के बाद क्या एक स्त्री के सपने, उसकी महत्वाकांक्षाएं सभी खत्म मान लिए जाएं? और भी ऐसे कई सवाल, जिनके उत्तरों को मां उस कहानी में ढूंढती नजर आती हैं। 'एक शुरुआत' एक वैसे बेराजगार युवक की कहानी है, जिसे रोजगार की तलाश में है। उसे एक अखबार में काम मिलने की उम्मीद भी है, लेकिन यह तभी हो सकता, जब वहां पहले से कार्य कर रहा एक व्यक्ति कार्यमुक्त हो जाए। इस वजह से युवक को उस व्यक्ति से चिढ़ हो जाती है और चाहने लगता है कि उसे कुछ हो जाए और ऐसा जब तक नहीं होगा, संपादक उसे काम पर नहीं रखेगा। मन में चल रहे इसी द्वंद के बीच उसकी मुलाकात एक छोटी बच्ची से होती है। बच्ची उसे एक परिकथा की एक पात्र लगती है और कुछ देर के लिए युवक अपनी तमाम परेशानियों को भूल कर उसके साथ खेलने लग जाता है। अचानक बच्ची की मां आकर उसे ले जाती है। बच्ची के जाने के बाद उसे पुनः अपनी बेरोजगारी की याद आने लगती है। उसे अब भी उम्मीद है कि अंततः संपादक उसे काम पर रख ही लेगा और ऐसा होने के बाद वह इत्मिनान से अपने किसी खास को पत्र लिख पाएगा। युवक को उस वक्त का इंतजार है।

'पहला दिन' एक ऐसे छोटे बच्चे की कहानी है जो स्कूल जाने में आनाकानी करता था। स्कूल जाना उसे बिल्कुल पसंद नहीं। स्कूल उसके लिए एक जेल है। वह किसी कीमत पर स्कूल नहीं जाना चाहता है, पर परिवार और यहां तक कि मुहल्ले के लोग उसे सुधारने पर उतारू हो जाते हैं। उसे जबरन स्कूल ले जाते हैं। स्कूल जाने के नाम पर बच्चा डरा-सहमा सा हो जाता है। उसकी मां समझ नहीं पाती ऐसा करना बच्चे के लिए उचित है या अनुचित? इसी तरह मां की इन तमाम कहानियां आप-पास होने वाली तमाम छोटी-छोटी घटनाओं से जुड़ी होती थीं जिनसे हम

आप सीधे तौर पर लगाव महसूस कर सकते हैं।

औरों की तरह यही लगता है कि मां का साथ पूरी जिंदगी भर के लिए हो, जब तक जीवित रहूं, वे साथ रहे। काश ऐसा हो पाता! आज जब मैं अपनी मां को याद करता हूं तो बचपन से अब तक की घटनाएं एक के बाद एक याद आने लगती हैं। उनके जाने के बाद उनको याद करना लाजिमी है। अनुशासन के मामले में वे बेहद सख्त थीं। यही वजह है कि हम तीनों भाई बहन उनके बेहद कड़े अनुशासन में पले-बढ़े। उनकी सख्त हिदायत थी कि हम दोस्ती से लेकर व्यवहार के मामले में हमें बेहद सर्तक रहें। दूसरी तरफ वे हमारी सबसे अच्छी दोस्तों में से एक थीं। हम उनसे कुछ भी कुछ शेयर करने से हिचकते नहीं थे। घर में हम मां के बनाए समाजवाद को मानते थे। उनका मानना था कि खाना बनाना हो या कोई भी काम, सबकी भागीदारी जरूरी है। आप किसी काम में निपुण भले ही नहीं हो सकते, पर आपकी भागीदारी जरूर निभानी चाहिए। इसलिए खाना बनने के पहले या उसके बाद की तमाम उपक्रमों से लेकर कई छोटे-बड़े घरेलू कार्यों में हमारी हिस्सेदारियां तय होती थीं – मसलन खाना परोसना से लेकर बर्तनों की सफाई तक। इसमें हम सभी भाई-बहनों को समान जिम्मेवारियां तय होती थीं। फिर उनके बनाए नियमों को कोई तोड़ता नहीं था।

मां को अच्छा खाने बनाने व खिलाने का बहुत शौक था। आमतौर पर समाज में खाना खिलाने वालों की संख्या थोड़ी कम होती है, लेकिन मां को अच्छा खाना बनाने के साथ-साथ खिलाने का भी शौक था। हां, इतना जरूर है कि उनकी खाने वालों से इस बात की उम्मीद होती थी कि उस खाने के संबंध में कुछ न कुछ प्रतिक्रिया अवश्य दें। मां खुद शाकाहारी थीं परंतु मांसाहारी से लेकर शाकाहारी व्यंजनों में नए-नए प्रयोग करके उन्हें स्वादिष्ट बनाना उन्हें बेहद पसंद था। अब चाहे वह कांजीवड़ा बनाने की बात हो, गट्टे की सब्जी बनाने की बात हो, तीज पर्व में गुजिया बनाने की बात हो या होली में मालपुए बनाने की बात। इस क्रम में मां थकती भी थी और थक जाने पर अक्सर कहती थीं कि उनकी यह पाक कला उनके जाने के साथ चली जाएगी। मां के इस शौक के हम आज भी कायल हैं। मां अब हमारे साथ नहीं हैं, लेकिन उनकी रचनाएं, उनके विचार, उनके स्नेह हमेशा हमारे साथ रहेंगे। ■

संपादक कान्ता सुधाकर की आधी दुनिया

एक छोटी सी कोशिश

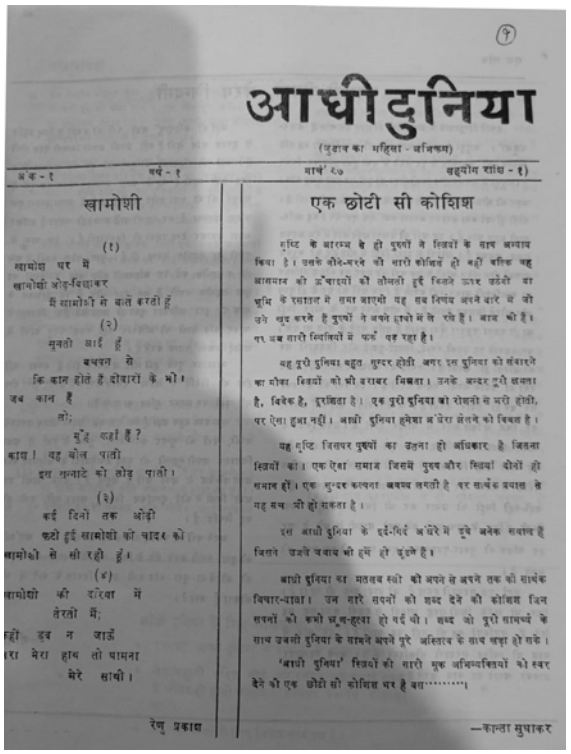

आधी दुनिया

(दुःख का महिला - अभिक्रम)

अंक - १ वर्ष - १ मार्च '९७ सहयोग राशि - १)

खामोशी

(१)
खामोश पर में
खामोशी ओढ़-बिछाकर
मैं खामोशी से बातें करती हूँ

(२)
सुनती आई हूँ
बचपन से
कि काम होते हैं दीवारों के भी।
जब कान हैं
तो;
मुँह कहाँ हैं?
काश! वह बोल पाती
इस सन्नाटे को तोड़ पाती।

(३)
कई दिनों तक ओढ़ी
फटी हुई खामोशी की चादर को
खामोशी से सी रही हूँ।

(४)
खामोशी की दरिया में
तैरती मैं;
कहीं डूब न जाऊँ
इसलिए मेरा हाथ तो थामना
मेरे साथी।

रेणु प्रकाश

एक छोटी सी कोशिश

सृष्टि के आरम्भ से ही पुरुषों ने स्त्रियों के साथ अन्याय किया है। उसके जीने-मरने की सारी कोशिशें ही नहीं बल्कि वह आसमान की ऊँचाइयों को तोलती हुई कितने ऊपर उठेगी या भूमि के रसातल में समा जाएगी यह सब निर्णय अपने बारे में जो उसे खुद करने हैं पुरुषों ने अपने हाथों में ले रखे हैं। आज भी है। पर अब सारी स्थितियों में फर्क पड़ रहा है।

यह पूरी दुनिया बहुत सुन्दर होती अगर इस दुनिया को संवारने का मौका स्त्रियों को भी बराबर मिलता। उनके अन्दर पूरी क्षमता है, विवेक है, दूरदर्शिता है। एक पूरी दुनिया जो रोशनी से भरी होती, पर ऐसा हुआ नहीं। आधी दुनिया हमेशा अंधेरा झेलने को विवश है।

यह सृष्टि जिसपर पुरुषों का उतना ही अधिकार है जितना स्त्रियों का। एक ऐसा समाज जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों हो समान हों। एक सुन्दर कल्पना अवश्य लगती है पर सार्थक प्रयास से यह सच भी हो सकता है।

इस आधी दुनिया के इर्द-गिर्द अंधेरे में डूबे अनेक सवाल हैं जिसके उजले जवाब भी हमें ही ढूंढ़ने हैं।

आधी दुनिया का मतलब स्त्री की अपने से अपने तक की सार्थक विचार-यात्रा। उन सारे सपनों को शब्द देने की कोशिश जिन सपनों की कभी भ्रूण-हत्या हो गई थी। शब्द जो पूरी सामर्थ्य के साथ उजली दुनिया के सामने अपने पूरे अस्तित्व के साथ खड़ा हो सके।

'आधी दुनिया' स्त्रियों की सारी मूक अभिव्यक्तियों को स्वर देने की एक छोटी-सी कोशिश भर है बस...।

(अंक-1, वर्ष-1) मार्च 97

समय की जरुरत

जीवन चाहे किसी का भी हो, स्त्री या पुरुष का, एक दूसरे के बिना एक लम्बा रेगिस्तान बन जाता है जिसे अकेले-अकेले पार करना, दोनों के लिए बेहद कठिन काम है। दोनों को एक दूसरे के लिए छांवदार वृक्ष बनना चाहिए। जीवन का यह शाश्वत सच है कि दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता है। जीवन को अलौकिक शांति एक दूसरे को समझने में है, न कि नकारने में। जाने कितनी बार जल-प्लावन हुआ। कितनी बार यह धरती डूबी। पर डूबा नहीं स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के प्रति आकर्षण और यही आकर्षण जीवन का शाश्वत सच है। पर जीवन के इस सुन्दर सच को पुरुष ने अपनी बीमार मानसिकता की वजह से असुन्दर बना दिया। उसने स्त्री के जीवन से उस भरोसे और विश्वास को ही छीन लिया जो उसे देना था।

वह बड़े-बड़े अधिकार भी तो नहीं चाहती है (स्त्रियों का एक बड़ा वर्ग तो इस 'अधिकार' शब्द का अर्थ भी नहीं

समझती है) वह तो चाहती है यदि वह पत्नी है तो पत्नी का गौरव, पत्नी की सुरक्षा माँ है तो पुत्र की आँखों में अपने लिए विश्वास और भरोसा ।

दिनों में नहीं, महीनों में नहीं, वर्षों में नहीं, सदियों में ही सही पर अब आवश्यकता है कि पूरा पुरुष समाज एक बार आत्म निरीक्षण करे कि उन्होंने स्त्रियों को क्या दिया? यदि वे सही समय पर आत्म निरीक्षण नहीं करते हैं तो अब स्त्री और पुरुष के संतुलन को साधे रखना और कठिन हो जाएगा।

यह आवश्यक है कि एक ऐसी जमीन बनाई जाए जहाँ दोनों एक दूसरे पर भरोसा कर सकें, साथ-साथ खड़ा रह सकें, क्योंकि यह जमीन जितनी पुरुषों की है उतनी ही स्त्रियों की भी है। अंक-2, वर्ष-1, जुलाई-97

जीवन का आलोकित पथ

कभी-कभी लगता है जीवन के सारे मूल्य समाप्त हो चुके हैं। पर ऐसा होता नहीं, कहीं न कहीं कुछ न कुछ शेष रहता है जो हमें यह विश्वास दिलाता है, भरोसा दिलाता है कि अभी भी कुछ न कुछ कहीं न कहीं जीवन के मूल्य शेष

आधी दुनिया

जीवन का आलोकित पथ

कभी–कभी लगता है जीवन के सारे मूल्य समाप्त हो चुके हैं। पर ऐसा होता नहीं, कहीं न कहीं कुछ न कुछ शेष रहता है जो हमें यह विश्वास दिलाता है, भरोसा दिलाता है कि अभी भी कुछ न कुछ कहीं न कहीं जीवन के मूल्य शेष हैं। हजार बलात्कार हो, उत्पीड़न हो, पर प्रेम भी है शेष, इससे इनकार नहीं कर सकते हैं।

जिस तरह फूल, संगीत, कविता, साहित्य और संस्कृति का जीवन में होना आवश्यक है उसी तरह आवश्यक है कि हमारे आपके जीवन में स्त्री की उपस्थिति पूरी गरिमा के साथ हो।

आप फूल, संगीत, कविता, साहित्य और संस्कृति के बिना अपने जीवन को सुन्दर और शिखर पर पहुंचा हुआ नहीं देख सकते हैं। ये सारी वस्तुएं आपको जीवन की सारी कुरुपताओं से दूर ले जाकर जीवन की हर सुन्दरता से आपका परिचय कराती है और यही सुन्दरता जीवन के वे मूल्य है जो हमारे अन्दर लालसा जगाती हैं, जीने के लिए, मोह उपजाती है पूरी सृष्टि के लिए आवश्यक है तो सिर्फ इतना कि जीवन में हम उनके मूल्यों को समझे और आने वाले कल को पूरे भरोसे के साथ उगता हुआ देखें।

हमने पहले भी कहा है कि स्त्री की उपस्थिति हमारे जीवन में पूरी गरिमा के साथ हो, इसके लिए आवश्यक है कि हर स्त्री अपनी जमीन को पहचाने, अपनी उपस्थिति को जाने और अपने को पहचान पाने में वे तभी सक्षम हो सकती है जब उनके जीवन में शिक्षा की रोशनी हो जिसके आलोक में वे बच्चों के लालन-पालन में लड़की और लड़का का भेद न करें। उन्हें पता होना चाहिए कि यह भेद कितना विनाशकारी है। यदि यह फर्क शुरू से न किया गया,लड़के को अलग से सारी सुविधाएं न दी गई, उसे अलग से यह न बतलाया जाय कि वह लड़का है, सिर्फ इसलिए श्रेष्ठ है उसने अगर अपने घर में बचपन से ही एक साफ-सुथरा माहौल देखा है तो यह लड़का आगे चलकर पूर्ण पुरुष बनने पर कभी भी स्त्रियों के प्रति अनादर करना जानेगा ही नहीं। यह रिश्ता की उस सुन्दरता को पहचानना सीखेगा चाहे वह किसी भी रूप में उसे मिले। माँ, बहन, प्रेमिका, पत्नी, पुत्री, मित्र वह अपने इन सम्बन्धों को सुन्दर परिणति देना जानेगा।

जब तक हम सपने देखते रहेंगे, सपनों पर भरोसा करते रहेंगे, तबतक हमारे साथ हमारे जीवन के सारे मूल्य जीवन पर्यन्त हमारे साथ रहेंगे और मृत्यु उपरान्त यही मूल्य, यही थाती विरासत के रूप में हम आने वाली पीढ़ियों को

सौंप देंगे ताकि वे भी फूल, कविता, धूप, हवा, आसमान की तरह स्त्री को भी प्यार करना सीखें, जाने। वे जाने सम्बन्धों के शिखर पर जीने की अलौकिक अनुभूति को और खुद को नीचे गिरने से बचा पाने में पूरी तरह से सक्षम और समर्थ हो। जिस दिन से वे फूल, हवा, धूप और स्त्री को प्यार करना सीख जाएंगे उसी दिन से उनका जीवन आलोकित हो जाएगा।

आधी दुनिया (अंक-1, वर्ष-2) जनवरी-98

उड़ते धूल के बगूले

जमीन-आसमान, जंगल-पहाड़, नदी, शहर, गाँव कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ मनुष्य नहीं पहुंच सकता है या इन सारी जगहों में मनुष्य नहीं है ऐसा नहीं है। पूरी दुनिया में सृष्टि के कण-कण में मनुष्य ने अपने होने की पहचान बनाई है। पर इन सबसे अलग एक दुनिया है। अद्भुत दुनिया वह है औरतों की दुनिया। इस दुनिया में बच्चियां हैं, लड़कियां हैं, प्रौढ़ा हैं, वृद्धा हैं। इस दुनिया में वे बच्चियां हैं जिनमें कुछ को प्यार मिले, खिलौने मिले। कुछ ने न प्यार देखा, न खिलौना जाना। कुछ घरों में जहाँ सब कुछ मिल सकता था फिर भी नहीं मिला इसीलिए कि लड़कियों की बेहतरी के लिए उनके पास उच्च विचार नहीं थे। लड़कियां जिनकी आँखों में बनफसा के फूल खिले भी और मुरझाए भी, पाया कम खोया ज्यादा और कभी-कभी तो कुछ भी नहीं पाया सिर्फ खोया ही खोया। जीवन के अंतिम चरण में पता चलता है कि सब कुछ रीत गया है शेष रह गया है उसके जीवन के चारों तरफ उड़ते अंतहीन धूल के बगूले।

फिर भी इस दुनिया में एक बात बहुत अद्भुत है, वह है यह दुनिया प्यार, भरोसा, ममता, स्नेह और विश्वास से लबालब भरा हुआ है। पुरुष चाहे तो उस अमृत से अपना जीवन दीर्घायु बना सकता है। पर ऐसा होता नहीं जाने-अनजाने या अहंकारवश पुरुष उस प्यारी सी दुनिया में घृणा के बीज डाल देता है। शायद वह इसे बहुत दूर तक नहीं सोच पाता कि यह बीज अगर वृक्ष बन गया तो उसके माथे पर से प्यार की घनी छाँव का साया ही उठ जाएगा। यह जमीन जहाँ प्यार के फूल खिले थे, विश्वास के फल लगे थे खुद उसने ही उखाड़ फेंके और उस जमीन पर जानबूझ कर लगाया कांटा ही कांटा। तब भी उसे याद नहीं रहा कि यह जमीन जो उसने औरतों के लिए तैयार की है उस जमीन पर उसे खुद भी चलना है। जितने लहूलुहान औरतों के पांव होंगे, उतने ही उसके भी होंगे। जिस दिन वह अपने पांवों की पीड़ा को महसूस कर लेगा उसे अवश्य ही औरतों के लहूलुहान पांव याद आएंगे और यहीं से एक प्रक्रिया शुरू होगी पुरुषों के बदलने की क्योंकि घृणा और हिंसा का न तो कोई रिश्ता है और न ही कोई रास्ता है।

'पैदल तो सभी चल रहे होते हैं,
'देखना तो है कि गिरा कौन है?'

अंक-2, वर्ष-2, मई-98

प्रयास और प्रतीक्षा

सुख, आनन्द या शांति ये चीजें ऐसी नहीं है जिन्हें हम बाजार गए और अपनी जरूरत या अपने घर की जरूरत के मुताबिक खरीद कर ले आए। वह तो मन के अंदर से

आधी दुनिया

प्रयास और प्रतीक्षा

सुख, आनन्द या शांति ये चीजें ऐसी नहीं है जिन्हें हम बाजार गए और अपनी जरूरत या अपने घर की जरूरत के मुताबिक खरीद कर ले आए। वह तो मन के अंदर से निकलने वाला एक स्रोत है जिसपर जाने-अनजाने हम पांव रखकर खड़े हैं और जीवन के सारे सुख, आनन्द और शांति को ढूंढते फिर रहे हैं वैभव की दुनिया में।

आज अगर पड़ोसी के घर में कोई कीमती वस्तु आ गई तो दूसरा परेशान है कि उसकी औकात पड़ोसी से छोटी हो गई है। 'अब वह क्या करे?' इतना बड़ा मकड़जाल है कि वह खुद भी उसमें उलझता जाता है और साथ में उलझता जाता है उसका परिवार। और यहीं से शुरू होता है एक-दूसरे को अपमानित करने की प्रक्रिया। तब कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होता है कि खुशी वहां नहीं है। हम अंधेरे में दौड़ रहे हैं और जीवन भर दौड़ते रहेंगे पर हाथ कुछ नहीं आएगा। शायद इस बात को समझने के लिए हमें सदियों पीछे लौटना पड़े। और हम हैं कि एक पग भी पीछे लौटने को तैयार नहीं हैं।

हम भूल जाते हैं कि हम ऐसी दुनिया लेकर क्या करेंगे जिसमें औरतें न हों, पुरुष न हों, बूढ़े न हों, बच्चे न हों। हमें तो ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें प्रकृति हो, पहाड़, जंगल, झरना, गांव, खेत और खलिहान हों। प्यार और विश्वास से भरी औरतें, औरतों का सम्मान करते पुरुष और बच्चों की किलकारियों से गूंजती यह दुनिया हो।

वृद्धों के अनुभव से लाभ उठाते हम। नौजवानों की उर्जा से निर्माण करते हम। हमें तो ऐसी ही दुनिया चाहिए। शायद यह दुनिया कल्पना से परे है। पर हम प्रतीक्षा तो कर ही सकते हैं मन में पूरे विश्वास के साथ कि शायद कभी ऐसी दुनिया का निर्माण हम कर पायें।

निकलने वाला एक स्रोत है जिसपर जाने-अनजाने हम पांव रखकर खड़े हैं और जीवन के सारे सुख, आनन्द और शांति को ढूंढते फिर रहे हैं। वैभव की दुनिया में आज अगर पड़ोसी के घर में कोई कीमती वस्तु आ गई तो दूसरा परेशान है कि उसकी औकात पड़ोसी से छोटी हो गई है। अब वह क्या करे? इतना बड़ा मकड़जाल है कि वह खुद भी उसमें उलझता जाता है और साथ में उलझता जाता है उसका परिवार और यहीं से शुरू होता है एक-दूसरे को अपमानित करने की प्रक्रिया तब कोई भी यह मानने को तैयार नहीं होता है कि खुशी वहां नहीं है। हम अंधेरे में दौड़ रहे हैं और जीवन भर दौड़ते रहेंगे पर हाथ कुछ नहीं आएगा। शायद इस बात को समझने के लिए हमें सदियों पीछे लौटना पड़े। और हम हैं कि एक पग भी पीछे लौटने को तैयार नहीं हैं।

हम भूल जाते हैं कि हम ऐसी दुनिया लेकर क्या करेंगे जिसमें औरतें न हों, पुरुष न हों, बूढ़े न हों, बच्चें न हों। हमें तो ऐसी दुनिया चाहिए जिसमें प्रकृति हो, पहाड़, जंगल, झरना, गांव, खेत और खलिहान हों। प्यार और विश्वास से भरी औरतें, औरतों का सम्मान करते पुरूष और बच्चों की किलकारियों से गूंजती यह दुनिया हो।

वृद्धों के अनुभव से लाभ उठाते हम, नौजवानों की उर्जा से निर्माण करते हम। हमें तो ऐसी ही दुनिया चाहिए। शायद यह दुनिया कल्पना से परे है। पर हम प्रतीक्षा तो कर ही सकते हैं मन में पूरे विश्वास के साथ कि शायद कभी ऐसी दुनिया का निर्माण हम कर पायें।

अंक-3, वर्ष 2 सितम्बर 1998

आज की जरूरत

हम आज नकारात्मक समाज में जी रहे हैं। नकारात्मक सोच, नकारात्मक सम्बन्ध । कभी-कभी आश्चर्य होता है कि क्या अच्छे काम होने बंद हो गए हैं? अखबार के पन्ने लूट, हत्या, बलात्कार की घटनाओं से भरे होते हैं। पर अगर इसी व्यवस्था में किसी ने अपाहिज, पीड़ित अथवा विधवा से विवाह कर लिया तो यह बात कोई खबर नहीं बनती। उसपर पन्ने नहीं रंगे जाते। कोई भी अच्छी बात अब प्रायः खबर नहीं

आधी दुनिया

आक्रोश

सच है बात
यह है रात
गहरी रात
सच है बात

शांत प्रभात
तिलक गया है
अंधकार में
भटक गया है

किसने गीत
बन्दी गीत
गा रहे सब
आ रहे सब

घासों में है
ओस के कण
टूटे सपने
टूटा मन

हमारी मांगें
भात की मांगें
जल रही है
दबल रही है
देश में सारे
सुनता जा रे

खेतों में बाली
बज रही है
धान की बाली
बज रही है

फिर भी कितनी
तंगहाली
घर हमारा
खाली - खाली।

-खान मोहम्मद फराबी

आज की जरूरत

हम आज नकारात्मक समाज में जी रहे हैं, नकारात्मक सोच, नकारात्मक सम्बन्ध। कभी-कभी आश्चर्य होता है कि क्या अच्छे काम होने बंद हो गए हैं? अखबार के पन्ने लूट, हत्या, बलात्कार की घटनाओं से भरे होते हैं। पर अगर इसी व्यवस्था में किसी ने अपाहिज, पीड़ित अथवा विधवा से विवाह कर लिया तो यह बात कोई खबर नहीं बनती। उसपर पन्ने नहीं रंग जाते कोई भी अच्छी बात अब प्रायः खबर नहीं बनती। फिल्मों ने तो रही- सही कसर पूरी कर दी है। टी.वी. सीरियलों में अच्छा नेक आदमी अपराधियों के आगे घुटने टेकता नजर आता है। लगता है यह सब कुछ अनजाने नहीं हो रहा है, सब कुछ सोची समझी योजना के तहत हो रहा है ताकि नकारात्मक सोच फले-फूले बढ़े।

आज ईमानदार, अच्छा और कर्मठ व्यक्ति हास्य का पात्र बन गया है। उसको हर तरह से पीछे धकेलने की साजिश चलती रहती है। किसी की कर्मठता पर उसे कोई पुरस्कार नहीं मिलता है। कोई किसी की ईमानदारी पर मुग्ध होकर उसे सम्मानित नहीं करता है।

अच्छे कामों की चर्चा जरूर होनी चाहिए। अच्छे विचार ही तो हमारी थाती है। जरूरत है वैचारिक मन्थन की। जिस दिन से हमारे जीवन में सकारात्मक सोच प्रवेश करेगा उसी दिन से हमारी दुनिया में परिवर्तन होना शुरू होगा। हम माँ के चेहरे पर बिखरी ममता की लकीरों को पहचानने लगेंगे, पिता की ऊँचाईयाँ समझ में आने लगेंगी। बहन का स्नेह आँखों के आगे फैल जाएगा। अचानक पड़ोसी अच्छे लगने लगेंगे।

-कान्ता सुथाकर

छाया - पु. गुप्त

बनती। फिल्मों ने तो रही-सही कसर पूरी कर दी है। टीवी सीरियलों में अच्छा नेक आदमी अपराधियों के आगे घुटने टेकता नजर आता है। लगता है यह सब कुछ अनजाने नहीं हो रहा है, सब कुछ सोची समझी योजना के तहत हो रहा है ताकि नकारात्मक सोच फले-फूले। आज ईमानदार, अच्छा और कर्मठ व्यक्ति हास्य का पात्र बन गया है। उसको हर तरह से पीछे धकेलने की साजिश चलती रहती है। किसी की कर्मठता पर उसे कोई पुरस्कार नहीं मिलता है। कोई किसी की ईमानदारी पर मुग्ध होकर उसे सम्मानित नहीं करता है।

अच्छे कामों की चर्चा जरूर होनी चाहिए। अच्छे विचार ही तो हमारी थाती है। जरूरत है वैचारिक मन्थन की। जिस दिन से हमारे जीवन में सकारात्मक सोच प्रवेश करेगा उसी दिन से हमारी दुनिया में परिवर्त्तन होना शुरू होगा। हम माँ के चेहरे पर बिखरी ममता की लकीरों को पहचानने लगेंगे, पिता की ऊँचाईयाँ समझ में आने लगेंगी। बहन का स्नेह आँखों के आगे फैल जाएगा। अचानक पड़ोसी अच्छे लगने लगेंगे।

जरूरत है - बेहद जरूरत है, अपने अन्दर इस सोच को विकसित करने की ताकि आसमान का रंग साफ-साफ

दिखाई दे, उड़ते परिन्दे नजर आएँ, सामने वाले की आँखों में अपने लिए छोटा-सा भरोसा पाएँ। यही तो जीवन है।

अंक-3, वर्ष-1, जुलाई, 99

नामालूम वह चिड़िया

वह एक नामालूम चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।
उसकी बार-बार की कोशिश
मुझे खुशी देती है
जब वह ढेर सा हौसला लिए
तिनके इकट्ठा कर छोटा-सा घोंसला बनाती है,
फिर उसी के लिए
तनकर खड़ी हो जाती है,
तब एक बहादुर सिपाही की तरह
तनकर खड़ी वह चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।
फिर किसी शाम
अचानक अपने प्यारे घरौंदे का
खून हुआ देखकर एकबार फिर से
नया घोंसला रचती वह चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।
अपने नन्हें पंखों से
रोज रोज
विस्तृत आकाश के विस्तार नापती वह चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।

अंक-3, वर्ष-2, अक्टूबर-दिसंबर-99

सम्पादकीय

एक आदमी ने दूसरे आदमी को मार डाला। एक जाति के लोगों ने दूसरे जाति के लोगों को जिंदा जला डाला। एक समूह के लोगों ने दूसरे समूह के लोगों के घर जला दिए और भी अनेक अत्याचार किए। यकीन नहीं आता कि सृष्टि में अपने आपको सर्वश्रेष्ठ कहने वाला मनुष्य यह सब कर रहा है, बुद्धि और विवेक से पूर्ण मनुष्य।

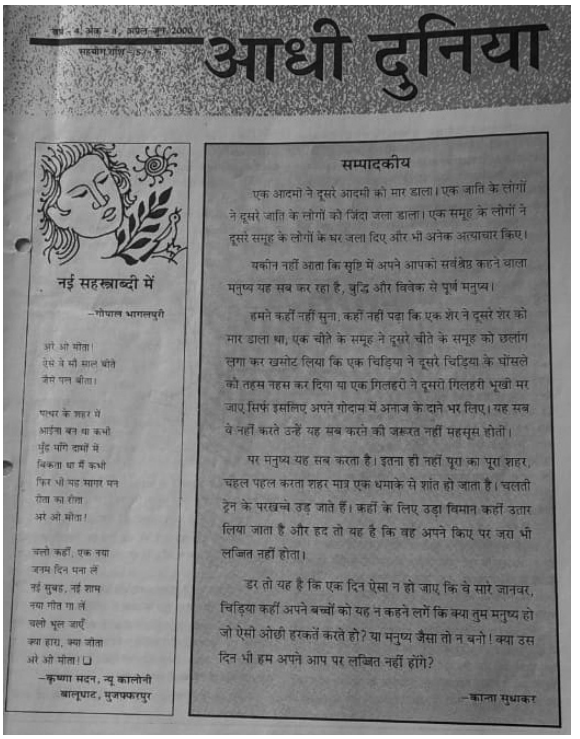
आधी दुनिया

सम्पादकीय

एक आदमी ने दूसरे आदमी को मार डाला। एक जाति के लोगों ने दूसरे जाति के लोगों को जिंदा जला डाला। एक समूह के लोगों ने दूसरे समूह के लोगों के घर जला दिए और भी अनेक अत्याचार किए।

यकीन नहीं आता कि सृष्टि में अपने आपको सर्वश्रेष्ठ कहने वाला मनुष्य यह सब कर रहा है, बुद्धि और विवेक से पूर्ण मनुष्य।

हमने कहीं नहीं सुना, कहीं नहीं पढ़ा कि एक शेर ने दूसरे शेर को मार डाला था, एक चीते के समूह ने दूसरे चीते के समूह को छलांग लगा कर खसोट लिया कि एक चिड़िया ने दूसरे चिड़िया के घोंसले को तहस नहस कर दिया या एक गिलहरी ने दूसरी गिलहरी भूखी मर जाए सिर्फ इसलिए अपने गोदाम में अनाज के दाने भर लिए। यह सब वे नहीं करते उन्हें यह सब करने की जरूरत नहीं महसूस होती।

पर मनुष्य यह सब करता है। इतना ही नहीं पूरा का पूरा शहर, चहल पहल करता शहर मात्र एक धमाके से शांत हो जाता है। चलती ट्रेन के परखच्चे उड़ जाते हैं। कहीं के लिए उड़ा विमान कहीं उतार लिया जाता है और हद तो यह है कि वह अपने किए पर जरा भी लज्जित नहीं होता।

डर तो यह है कि एक दिन ऐसा न हो जाए कि वे सारे जानवर, चिड़िया कहीं अपने बच्चों को यह न कहने लगे कि क्या तुम मनुष्य हो जो ऐसी ओछी हरकतें करते हो? या मनुष्य जैसा तो न बनो! क्या उस दिन भी हम अपने आप पर लज्जित नहीं होंगे?

अंक-3, वर्ष-4, अप्रैल-जून 2000

अपना सच

डॉ. राधाकृष्ण सहाय

कान्ता सुधाकर की कहानियाँ पढ़कर हेनरी जेम्स द्वारा चर्चित एक प्रसिद्ध उपाख्यान स्मरण हो आया। हेनरी जेम्स की एक परिचिता अंग्रेज कथाकार थी। एक दिन वह महिला कथाकार एक सीढ़ी से उतर रही थी। वहीं उसे एक दरवाजा दिखा। दरवाजे के भीतर कुछ युवा प्रोटेस्टेण्ट अपना भोजन समाप्त कर मेज पर बैठे थे। जेम्स का कहना है कि उस एक हल्की सी झाँकी ने उस महिला कथाकार के भीतर क्षण भर में एक चित्र खड़ा कर दिया और वही क्षणानुभूति फ्रेंच प्रोटेस्टेण्ट युवा से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण कहानी का कारण बन गई। उस एक क्षण ने महिला कथाकार को यह बतला दिया कि युवा क्या है, प्रोटेस्टेण्ट होने का अर्थ क्या है, फ्रेंच कैसे होते हैं और वही क्षण एक ठोस बिम्ब में बदल गया। सारांश यह कि एलिजाबेथ बोवेन के शब्दों में कहानी का मूलाधार सुप्रभाव्यता होती है।

कान्ता सुधाकर में सुप्रभाव्यता अत्यंत प्रखर है। सम्भवतः यही कारण है कि उनके व्यक्तिगत जीवन के छोटे से छोटे क्षण भी साकार हो उठे हैं और जीवन तथा मृत्यु के बीच घटित तुच्छ-नगण्य क्षण सार्थक हो कहानी में ढल गए हैं। इनकी कहानियों की जान है लेखिका की निजता, उनका अपनापन जो इस महिला कथाकार की सुप्रभाव्यता की देन है। इसीलिए इन कहानियों में अलग से छटकनेवाली न कोई कलात्मकता न कोई चमत्कार, न कोई चारित्रिक वैशिष्ट्य और न कोई मनोवैज्ञानिक विवेचन-विश्लेषण, तथापि इन कहानियों में सब कुछ है। यह सब कुछ लेखिका की निजता के रंग में इस प्रकार घुल-मिल गए हैं कि ये कहानियाँ नदी को छोटी-छोटी लहरों की तरह, अथवा तरानाविहीन क्षणिक आलाप की गूंज की तरह पाठक को अपने सुर और लय में बिना बाँधे नहीं छोड़तीं।

शिल्प के स्तर पर ये कहानियाँ गीत की किसी एक पंक्ति की गुनगुनाइट को हल्की गूँज को हवा में तैराकर कहानी की समस्त परिभाषाओं का अति है। कहानी को एक नए धरातल पर प्रतिष्ठित करती हैं। लेखिका के पास अद्भुत संयम है और वह उसके सहारे अपनी सुप्रभाव्यता के सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे जीवन के छोटे से छोटे क्षण को एक निश्चित शुरुआत देकर उन्हें एक निश्चित परिणति तक पहुँचा देती हैं, उन्हें एक ठोस बिम्ब में, एक पूर्ण चित्र में बदल देती है। इस दृष्टि से, इन कहानियों का शिल्प कपा कहने की शैली और कथा लिखने की तकनीक के बीच की सीमा रेखा को तोड़ता है तथा इन दोनों के बीच एक नया रास्ता बनाता है।

इन कहानियों के साथ पूरी गुंजाइश है कि हिन्दी के आलोचकबंधु इन कहानियों को डायरी या संस्मरण मान लें, या इन्हें कहानी मानें ही नहीं। इसलिए, यहाँ यह दुहरा देना अपराध नहीं होगा कि कहानी कहानीकार के हाथो कोई भी रूप धारण कर सकती है – गद्य काव्य से लेकर रंगविहीन विवरण तया सूक्ष्म से सूक्ष्म विवरणों से लेकर स्थूल कार्यकलापों तक सम्भवतः इसी असीमित लोच (एलास्टिसिटी) के कारण कहानी आज तक किसी एक परिभाषा में भेंट नहीं पायी है।

अन्त में, यह कहना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि कभी-कभी यशस्वी हकीकृतियों की अपेक्षा अख्यात, शौकिया (एमेचर) लेखक को यही अधिक महत्वपूर्ण हो उठती हैं। कान्ता सुधाकर की कहानियाँ इसका उदाहरण है।

क्योंकि लेखिका का यह पहला संग्रह है इसलिए इसकी कुछेक कहानियां बनते-बनते भी नहीं बन पायी है। लेकिन इसकी अधिकांश कहानियां फिनिश्ड हैं। ■

(साभार : वर्ष 1976 में सीमांत प्रकाशन पटना द्वारा प्रकाशित कान्ता सुधाकर की पुस्तक 'अपना सच' से)

लापता होती नदियों की दास्तान

आशुतोष

मनुष्य की अभिव्यक्ति की आदिम विधा कविता है। आदिम गंध से पुर अद्यतन आभरण से आवृत्त कविता हमारी अब की कथा भी प्रामाणिकता से कहती है। संवेदना का इतिहास यदि लिखना होगा, तो बिना कविता के संभव नहीं होगा। कविता को किसी यांत्रिक परिभाषा में बाँधा नहीं जा सका है। इसे आँकने के सभी प्रतिमान ध्वस्त होते रहे हैं। अंतर्मन को व्यंजित करने के लिहाज से इसकी तुलना और किसी से नहीं हो सकती। समाज और संस्कृति के विकास की पहला आँच से यही तपती है। आधुनिकता की सुनहली रोशनी पहली बार यही दीपित हुई है और उत्तर आधुनिकता की इतिहास विरोधी आँधी में भी कविता ही हमें आश्वस्त करती ही कहती है कि स्मृतियाँ बची रहेंगी। इधर कुछ कवियों ने कहना शुरु किया है कि नवें दशक के बाद हिंदी कविता में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं दिख रहा है। जाहिर है कि ऐसी बातें करने वाले सभी कवि उसी दशक में उभरकर सामने आये हैं। कविता जो भी रचे अहंकार को ध्वस्त करती रही है। आज की रचनाशीलता पर प्रश्न-चिह्न लगानेवाले खुद ही घर गये। कविता सदानीरा है, हर क्षण परिवर्तित। किसी भी स्थिति में इसके स्रोत को बाँधा नहीं जा सकता।

अक्सर हम हर युग के कवियों की सूची बनाते हैं। स्पष्ट है कि सभी सूचियाँ सभी कवियों को समाहित नहीं कर पाती हैं। शामिल कवियों से छूट गये कवियों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। नहीं जानता कि कान्ता सुधाकर किस-किस सूची में शामिल हैं। मैंने इन्हें सूचीबद्ध नहीं देखा है। यह मेरी सीमा भी हो सकती है। इतने विशाल हिंदी प्रदेश में इतने कम कवियों पर बातचीत आखिर क्यों होती है? सुविधा के लिए बनाये गये खाने हमारे आलोचकों के कैदखाने हो गये हैं। कान्ता सुधाकर की कविताओं को पढ़ने पर इन्हें किसी बने-बनाये खाने

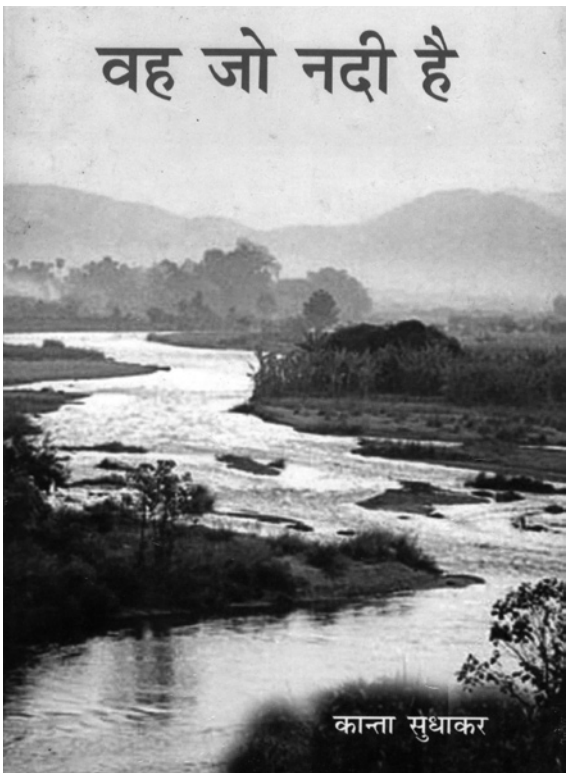

में डालना कठिन होता है। स्त्री होने के नाते इन्हें स्त्री विमर्श की कवयित्रियों में शुमार किया जा सकता था। लेकिन यहाँ वैधानिक दिक्कतें हैं। इनकी कविताओं में वह तिलमिलाहट नहीं है, जो ऐसी कवयित्रियों में प्रायः मिलती रही है। इसके अलावा उनकी कविताओं की चिंता कुछ विस्तृत और बहु आयामी भी है। इस तरह वे ऐसी किसी सूची से स्वाभाविक रूप से बेदखल हो जाती हैं। प्रगतिशील कविताओं में भी उनकी कविताएँ गिनी नहीं जा सकती हैं। इनकी कविताएं साकांक्ष होती हुई भी उन कतिपय अहर्ताओं से वंचित हैं, जिनके विना पर उन्हें प्रगतिशील कहा जा सकता।

कान्ता सुधाकर की कविताओं पर बात करना कठिन

> "हमारी नदियाँ बेची जा रही हैं, गिरवी रखी जा रही हैं, प्रदूषित की जा रही हैं। हमारे देश की स्त्रियों की दशा यहाँ की नदियों की तरह है। कान्ता सुधाकर की चिंता इसी परिवेश से उपजी है। नदी और औरत हमारे जीवन को रचती हैं, सजल-सरस बनाती हैं..."

है, इसलिए नहीं कि उनकी कविताओं की संवेदना विरल है। उन्होंने ऐसे बिंबों, प्रतीकों या फैंटेसियों में भी अपने भावों को नहीं रखा है, जो अबुझ हों। फिर कठिनाई कहाँ है? सूची से अलग रचनाकारों पर सोचने के लिए अलग से एक ढाँचा बनाना होता है और यह आसान नहीं होता है। वास्तविकता तो यह है कि सभी कविताएँ अनुपम होती हैं। सभी कवि बेजोड़ होते हैं। सभी के लिए चिंता की सारणी भी अलग-अलग ही होगी। लेकिन जिस दौर से हम गुजर रहे हैं, उसमें यह संभव नहीं है। इतना वक्त किसी के पास नहीं है। बहुत सारे काम हैं। बहुत सारी व्यस्तताएं हैं। कान्ता सुधाकर का काव्य संग्रह 'वह जो नदी है' 2009 में नयी किताब से प्रकाशित हुआ है। यह 2014 का वर्ष है। पाँच साल गुजर गये हैं। इतने दिनों में हिंदी रचना संसार बहुत आगे बढ़ गया है। नयी बहसों में वह मुब्तिला है। नये काव्य संग्रह आ गये हैं। उनपर समीक्षाएं लिखी जा रही हैं। यह अटपटा लगता है कि मैं इसी पुराने काव्य संग्रह पर बात करूँ। मेरा इस संग्रह का यह दूसरा पाठ है। समय जो आ रहा है, वह कई मायने में चुनौतियों से भरा है। विकास और ग्रोथ की छाया हमारे समाज तथा देश को आक्रांत कर रही है। यह चिंता सार्वदेशिक है। भारतीय समाज की अद्भुत विडम्बना है। हमारे बौद्धिक दशकों से कहते आ रहे हैं कि हमारा मुल्क एकसाथ कई शताब्दियों में जी रहा है। आज छुआछूत है, मध्यकालीन बर्बरता है। स्त्रियों के प्रति वही सामंती सोच, जिसपर बाजारू संस्कृति का तड़का डला है। स्त्रियाँ बाजार में खरीदी-बेची जा रही है। सरे आम बलात्कार किये जा रहे हैं। इस मामले में अखिल भारतीय समानता है। नगर, महानगर, गाँव—सब एक से एक। हमारी नदियाँ बेची जा रही हैं, गिरवी रखी जा रही हैं, प्रदूषित की जा रही हैं। हमारे देश की स्त्रियों की दशा यहाँ की नदियों की तरह है। कान्ता सुधाकर की चिंता इसी परिवेश से उपजी है। नदी और औरत हमारे जीवन को रचती हैं, सजल-सरस बनाती हैं...

नदी
वेगवती नदी
जो बनाती है धरती को
रसवंती,
वह एक औरत
होती है नदी।

नदी न हो तो, हम जीवन की कल्पना नहीं कर सकते। औरत के बिना क्या इस सृष्टि का कोई मोल है? कितनी विरान होगी धरती, नदियों और स्त्रियों के बिना, हम कल्पना भी नहीं कर सकते—

नदी जहाँ नहीं पहुँच पाती है
रहती है सूखी धरती
जल और अन्न विहीन
भूखी और प्यासी
वह एक औरत
होती है धरती।

'वह जो नदी है' की काव्य संवेदना आर्गेनिक है। अवांतर के लिए कोई अवकाश नहीं। इस देश में सदियों से नारी को या तो पूजा की वस्तु समझा है या भोग की। इस संग्रह में स्त्रियों पर कई कविताएं हैं—आंटा गूँथती औरत, तुम्हारी परम्परा, वापसी, बिन्नी आदि। वंचना भारतीय समाज में स्त्रियों का सच है। एक स्त्री के जीवन उसके सपनों का कोई मूल्य नहीं। सपने देखनेवाली स्त्री का जीवन काँटों से छिल जाता है...

एक औरत
जो कितना कुछ सहकर
बनती है सीता, सावित्री, द्रोपदी
और रूप कुँवर तुम्हारे लिए
उसे तुम
मानते हो महज एक औरत
जो जन्म लेती है, मर भी जाती है
केवल तुम्हारे लिए।

इस संग्रह की कविताओं में स्त्रियों के दुख को स्त्रियों के माध्यम से देखने की कोशिश हुई है। वापसी कविता की पंक्तियों में जो दर्द पैवस्त है, वह हमारे समाज की स्त्रियों के दिलों में घर कर गई असुरक्षा-बोध ही तो है। कन्या के विवाह के बाद माता-पिता ही नहीं सगे-संबंधी यहाँ तक कि पास-पड़ोस गांव के लोग भी आश्वस्त और निश्चिंत हो जाते हैं। जब विवाह के बाद पहली बार लड़की मैके लौटकर आती है, सब यही जानना चाहते हैं कि वह कितना खुश है। पर ऐसा होता कहाँ है!

उसकी आँखों में फूलों की जगह
उग आया है कैसा यह कँटीला कैक्टस?
कैसा है यह
अजनबी सूनापन?

उसकी आँखों में बसी दहशत उसे देखने आई हुई औरतों के मन में अपनी-अपनी बेटियों की चिंता समा जाती है—

उन आँखों की दहशत से
घबराकर हमसब
लौट आती हैं
अपने-अपने घर
अपनी-अपनी बेटियों पर
सोचती हुई।

बिन्नी एक छोटी-सी लड़की है। वह बड़ी हो रही है। अपनी माँ और बुआ को देखती हुई अपने भविष्य की कल्पना कर रही है। उसे अपनी माँ और बुआ का जीवन नहीं चाहिए। वह तो अपने लिए इनसे अलग दुनिया रचना चाहती है...

सोचती है बिन्नी
क्या उसे भी करना है एक दिन
अपना पढ़ना-लिखना बंद
और जाना है ससुराल रो रो कर?
नहीं
नहीं
सोचती है बिन्नी
नहीं बनेगी वह
दीदी, बुआ और माँ।
पढ़ेगी
लिखेगी वह
अपना फैसला खुद करेगी वह।

पितृसत्तात्मक समाज में बढ़ रही लड़कियाँ अपनी माँ पर हो रहे अत्याचार से पीड़ित हो रही हैं। उसके कोमल मन में सपने की जगह डर ने डेरा डाल लिया है—

लड़की चाहती है
अपनी मां के चेहरे से
भय को धो डाले
इस घर की दीवारों को
मजबूत बना डाले इतना
जिन्हें पिता अपने घूँसों से
तोड़ नहीं सकें कभी
वह बना देना चाहती है
घर की छत में
एक रोशनदान
जिसकी रोसनी में
वह रच सके
अपनी माँ के लिए
एक सर्वोत्तम स्वप्न।

कान्ता सुधाकर की कविताओं में स्त्रियों का विद्रोह तो है, लेकिन अराजकता नहीं। विद्रोह में जिम्मेवारी का गहरा अहसास भी निहित है। यही भाव उन्हे दूसरी स्त्रीवादी कवयित्रियों से जुदा कर देता है। वह अपनी ही कविता वह नामालूम चिड़िया की चिड़िया की तरह अपने घोंसले के

उजड़ने पर भी हार नहीं मानती हैं, फिर से रचने के लिए प्रस्तुत रहती हैं—

एकबार फिर से
एक नया घोंसला रचती वह चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।
अपने नन्हें पंखों से
आकाश का विस्तार नापती वह नामालूम चिड़िया
मुझे बेहद अच्छी लगती है।

स्त्री सबकुछ रचती है, लेकिन उसके हिस्से रचने का सुख नहीं आता। नदी सामने बहती रहती है। उसे उसका श्रेय नहीं मिलता। वह किनारे जलते हुए रेत पर झुलसती रहती है–

नदी के पास रहकर भी
खड़ी-खड़ी
झुलसती रही रेत पर
और
थोड़ी ही दूर पर
बहती रही एक नदी
उसकी ही रची हुई, बहती वह नदी।
(एक नदी)

कान्ता सुधाकर की कविताओं में स्त्री के कई रूप हैं। सिरजती हुई भी वह बहुत लाचार और वंचित है। उसके

सपनों पर भी पहरे लगे हैं। वह निषेधों के अँधेरे बंद कमरें में कैद कर ली जाती है। पुरुषों की दुनिया उसके सपनों डर जाती है – 'लड़की/ मत निहारो फूलों को/ टँक जाएँगे आँखों में *(सीख)*। 'सब डरते हैं, कहीं उसमें मुक्ति की कामना जग जाये-'पर्वतों के पार जो/उगा बड़ा-सा सूरज अभी-अभी/तुम्हारी हँसी देखने को/रुक जाएगा/ ठहर जाएगा अब/इसी घाटी में। लड़की/रुक जाओ/थम जा/ किसी नदी का रुख/मुड़ न जाए कहीं/तुम्हारे गीतों से। इसीलिए/वापस हो जाओ/सुरक्षित रहो हमारी/निषेधों की दुनिया में *(वही)*।

कवयित्री को पूरा विश्वास है कि लड़कियाँ एकदिन कुलाँचे भरती हुई आगे निकल जाएगी। वह नहीं मानेगी निषेध को। रच ही लेगी एक बेहतर पृथ्वी। वह कहती है—'कितने युगों से/ अँधेरे के सलीब पर टँगी हुई मैं/ अब थक चुकी हूँ। 'वह अब चेत गई है। उसने सोच लिया है। वह अब खुद अपना सलीब नहीं ढोएगी—'फिर से सलीब पर नहीं टँगूगी/आहिस्ता-आहिस्ता तुम्हारे सामने ही/ किसीकिसी सुदूर रोशनी की ठंडी झील में/अपने सारे जख्मों के साथ उतर जाऊँगी/'*(सलीब और तुम)*।

'वह जो नदी है' काव्य संग्रह में कुल पचास कविताओँ को चार खंडों में प्रस्तुत किया गया है। चारों खंडो के नाम किसी-न-किसी कविता के नाम पर रखा गया है। पहले खंड में कुल सोलह कविताएं हैं, दूसरे खंड में नौ, तीसरे में आठ और चौथे खंड में सत्रह। इस पुस्तक की सभी कविताएं अलग आस्वाद से भरी हुई हैं। स्त्री की दृष्टि से देखी गई सृष्टि है। समाज जैसा है और जैसा बनना है – कान्ता सुधाकर ने अपनी कविताओं में सबकुछ दर्ज किया है। नारे नहीं हैं। सपाटबयानी नहीं है। क्लिष्ट बिंब नहीं हैं। संकेत हैं, जीवन की छवियाँ हैं। विचार से पगी हुई कविताएं अपने ले अलग से अपनी काव्य-भाषा रचती ही जीवन के सत्य को उद्घाटित करती हैं। पहले खंड 'वह नामालूम चिड़िया' में स्त्री, उसके जीवन की विडंबनाओं और उसके सपनों की बातें हैं। हमने ऊपर उस खंड की कविताओं पर विचार किया है। मेरी दृष्टि में यह खंड महत्त्वपूर्ण है।

दूसरे खंड में प्रकृति संबंधी कविताएं हैं। प्रकृति के दोहन से कवयित्री बहुत दुखी हैं। उनके जीवन का बड़ा हिस्सा झारखंड के अँचल में गुजरा है। उन्होंने प्रकृति नैसर्गिक रूप को देखा है और इसी लिए उसपर पड़े आघात उन्हें बेचैन कर देते है। वह कहती हैं—पेड़ों और फूलों से विहीन/लेटी है एक घाटी।/जिसकी छाती में/ घाव हैं हजारों/उन वृक्षों के/जिन्हें/काट डाले कभी हमने/ *(कोई तीली जलती है)*। पहाड़ और सपना अत्यंत मार्मिक कविता है। पहाड़ और वन से आच्छादित परिवेश में जिसकी चेतना विकास हुआ हो, जाहिर है कि उसके सपनों की रचना में उस प्रकृति की बडी भूमिका रही होगी। बहुत दिनों के बाद वह लौटी हैं बचपन के पहाड़ के पास। फिर से जी लेना चाहती थीं बीते दिन—'मैंने एक सपना छुपाकर रख दिया

था वहाँ/उस पहाड़ पर। 'इस दरम्यान मुल्क के विकास के नाम पर प्रकृति को कीमत चुकानी पड़ी—मैं गई वहां, जो देखा/दंग ही देखकर/पहाड़ तो घायल पड़ा हुआ/छीन लिए थे किसी ने उससे/मेरे, उसके, उनके तमाम सपने। 'इस खंड की कविताओं में मनुष्य और प्रकृति के बीच के सघन रिश्तों की भी कथा है, बार-बार कवयित्री लौट जाना चाहती है अपनी पुरानी परिचित आत्मीय संसार में—'ओ मेरे बचपन की सखी/नदी/ लौटी हूँ/बहुत दिनों बाद/तुम्हारे पास/मिली हूँ/ कई युगों बाद तुमसे।'

वह जो नदी है के तीसरे खंड का नाम बच्चों से क्षमा-याचना दिया गया है। इस शीर्षक से एक कविता भी संग्रह में है। भारत के बच्चों का बदहाल जीवन के प्रति वह अपनी भी जिम्मेवारी महसूस करती हैं। बच्चे कूड़े के ढेर से कागज बीनते बच्चे हैं। शिक्षा से वंचित बच्चे हैं। भू-मंडलीकरण और बाजारवाद ने भावी पीढ़ी के भविष्य को अँधेरे में डुबा दिया है। कवयित्री अपनी असाहयता के लिए बच्चों से क्षमा-प्रार्थी हैं—ओ मेरे बच्चो/मुझे क्षमा करो/मैंने वादा किया था/कि विरासत में सौंपूँगी तुम्हें/हरे-भरे जंगल, /गीत गाती हवा/नीली झील में मुखड़ा निहारता/गर्वीला पर्वत। *(बच्चों से क्षमा-याचना)*।

चौथा खंड 'तुम्हारे विश्वास का बरगद' में निजी जीवन की निविड़ अनुभूतियां दर्ज हैं। इन कविताओं में अपने जीवन के गहन अनुभव की क्रिया-प्रतिक्रिया की बेहद ईमानदार अभिव्यक्ति हुई है। इनमें अपने जीवन के प्रति स्वयं की चाहना और है कुछ बची हुईं इच्छाएँ। एक कविता है शर्त, इसमें अपने जीवन साथी से वह कहती हैं—'मैं/ आकाश में टंके हैं/तुम्हारे सारे सपने/वापस लौटाने को तैयार हूँ तुम्हें/शर्त यह है/कि वृक्ष की टहनियों की तरह फैली/काँटों-चुभी/मेरी घायल उंगलियों का दर्द/तुम भी/ करने लगो महसूस।'

कान्ता सुधाकर की कविताओं पर बात करना इतना सहज भी नहीं है। एक-एक कविताओं की भाव-संरचना पर विचार करने के लिए केवल धैर्य की आवश्यकता ही नहीं है, वरन् उस अनुभव-संसार के सुख-दुख से अंतर्मन से जुड़ना भी है। आवयविक समीक्षा के लिए यह अनिवार्य है। ■

लड़की मत देखो आसमान

यादवेन्द्र

थोड़े समय पहले मेरी कान्ता भाभी से मुलाकात हुई। लगभग 30-32 सालों बाद। मेरे शुरूआती साहित्यिक संस्कार जिन लोगों की देख रेख में बने और विकसित हुए हैं, कान्ता भाभी मेरे जीवन के उन विशिष्ट लोगों में एक हैं। अपने छात्र जीवन में एक नाटक में उनकी तलत महमूद सरीखी कांपती हुई मोहक आवाज सुन के मैं उन तक खिंचा चला गया था। इस बार की मुलाकात में उन्होंने अपनी किताब पढ़ने को दी तो मैं रोमांचित हो गया... मुझे वो जमाना आ गया जब रसोई में काम करते हुए कभी किसी कागज पर तो कभी किसी कागजी थैले पर वो मन की बातें लिख दिया करती थी... इस संग्रह से एक कविता

क्योंकि

अच्छा हुआ
कि मैं सीता नहीं
तुम राम नहीं
केवल मनुष्य हैं हम

अग्नि-परीक्षा
लेते नहीं
देते नहीं
क्योंकि हमें
एक-दूसरे से प्यार है बहुत,

क्योंकि हमें
एक-दूसरे से प्यार है बहुत।

क्योंकि हमें
इतिहास बनने के लिए
नहीं करनी है कोई लीला।

('काव्य-प्रसंग', कवियों का ब्लॉग से)

रौशनी की तलाश

कान्ता सुधाकर

जुड़ाव के पीछे की हलचल

कुएं के पास खड़ा
अनार का एक पेड़
हाथ में लेकर रुमाल
बुलाता है पीछे के लम्बू बांस को
उसके इंकार पर
बेलने गुस्से में फ़ेंक दी है गेंद
मनुहार करता है बेर
गोद में लिए बड़ा सा खजाना
बुलाता है चिड़िया को।

इमली ने पूछा
वह बाबरी गिलहरी
अब गई कहाँ दौड़।

आम की फुनगी पर मंजर करते हैं
जिद कि सुनेंगे कहानी
पीछे की जोरिया से
किरणों की अंतिम लकड़ियों का
बांधता गठर।

बरजता है सूरज सबको
अब चलो घर।
अब आज और शरारत नहीं
अब सारे किस्से कल।

उसका घर

पतली इतराती बलखाती
वह नदी
लिपट गई उस वृक्ष से
पता पूछती है हवा के घर का।
युक्लिप्टस के
बेबात हिलते सिर
समझ नहीं पाते सवाल नदी का।
क्या पूछती है नदी ?
देखते हैं एक दूसरे को।
पूरी धरती पर घूम-घूम
पूछती है नदी/कहां है घर हवा का?
लंबे-चौड़े घासीले मैदानों में
लोट-पोट कहती है हवा
यहां है, यहां है, यहां है, घर मेरा।
युक्लिप्टस के शिखर पर
थिरकती-फिरती कहती हवा
यहां है, यहां है, यहां है घर मेरा।
नदी की लहर लहर पर
उठती-गिरती तेज हवा
कहती फिरती यह भी है
यह भी है घर मेरा।

एक बार फिर

मैं इस शहर की
पेड़ विहीन, लंबी और धूल भरी सड़कों पर
चलते हुए
तुम्हें सोच भी नहीं सकती।
तेजी से भागती हुई
बसों को पकड़ते समय
तुम्हें सोचना
कितना बेमानी लगता है।
तुम्हें सोचने के लिए
नितांत अपना, अकेला

एक छोटा-सा पल तो चाहिए ही
जहां स्मृतियों की बर्फ हटाकर
कोई नदी/ झरने के रूप में
बदल जाए और
अचानक तुम मिल जाओ मुझे
नदी और झरने के बीच
अनागत होता हुआ देखती रहूं तुम्हें।
पर दुःस्वप्न की तरह
शहर की तमाम सड़कें
और भी लंबी होती जाती हैं
और तुम्हारी स्मृति पर
धूल की एक और परत
चढ़ जाती है। फिर दूसरे दिन
उन्ही सड़को पर चलने को
तैयार करती हूं अपने आपको
एक बार फिर
एक बार फिर।

आओ लौट चलें

मैं बेटी हूं विजन की
चाहती हूं पुनः
लौट जाना
उसी अरण्य की ओर
जहां आज भी
देवदार के घने जंगल
हाथ हिला-हिला
बुलाते हैं मुझे।
जहां आज भी
सोई है
पर्वतों की गोद में
वह नीली झील
जिसकी गोद में रखा है
काले पत्थर का एक टुकड़ा।
मैं अवश्य ही
लौट जाऊंगी
उन भेडों के पास
जिनकी पीठ पर
उग आए है लच्छे।
जब मैं लौट आऊंगी वापस
विजन की गुफाओं में
रोक नहीं सकोगे
तुम मुझे।

मैं जो हूं

मैं सागर नहीं
सागर किनारे बजते
वायलिन की
एक दर्द भरी
धुन भर हूं।
मैं राह नहीं
राह की दूरी बनती
एक छोटी सी
शिला भर हूं।
मैं बसंत नहीं
पतझड़ में गिरते
हर पत्ते की मर-मर हूं।
कभी कोई गीत गा गया था
चूम चुनर बासंती की
याद दिलाती
बीती हवा की
सर-सर-सर भर हूं।

मैं इन दिनों

बुनने लगी हूं पंख।
मेरे पंख बुनने से बहुत परेशान हैं लोग
वे पंख बुनने का
नहीं समझते हैं कारण।

थोड़ा डर भी रहे हैं वे
क्योंकि उन्हें पता है
जब बन जाएगा यह पंख
मैं उनकी दुनिया से निकल जाऊंगी सुदूर
फिर वे कभी भी मुझे
नहीं बांध पाएंगे
अपनी गिरफ्त में।
उन्हें पता है यह भी
कि पंख लगने के बाद
मैं उड़ती हुई एक दिन
पहाड़ों से गिरती हुई
हो जाऊंगी तब्दील
एक झरने में
और वे
रहेंगे अभिशप्त ता उम्र
मेरे पंख बुनने के दुख से।

प्रश्न/तुम

अंधेरे शहर में
कंदील जलाकर
रौशन होने का सपना
तुम देख सकते हो
मैं नहीं।
फिर भी
आश्चर्य है
कि लोग तुम्हें
क्यों कर देते हैं माफ बार-बार
लोग तुम पर
क्यों कर लेते हैं यकीन बार-बार।

क्यों?

एक बंजर जमीन
जिसे इंतजार है
जरखेज होने का।
एक टुकड़ा अंधेरा
जिसे तलाश है रोशनी की
लिपट गए हैं मेरे गिर्द आकर,
क्यों?
तपते हुए फैले मीलों रेत पर
उगे कैक्टस को
जाने तलाश है किस गुलाब की
सिमट गए हैं मेरे गिर्द आकर
क्यों?
दूर तक फैले आसमान में
यहां से वहां तक कतार में
उड़ती, गाती, कैरा की पंतों को
जिस वृक्ष की तलाश है
ठहर गई है मेरे गिर्द आकर
क्यों?
अब यह नदी
तेजी से दौड़ती, पहाड़ों से टकराती
जिसे तलाश है समंदर की बांहों को
सिमट गई है मेरे गिर्द आकर
क्यों?

सिर्फ मैं

प्रजापति कहती है
तुम्हारे हर स्वर में बंधी
क्या मैं हूं? नहीं नहीं नहीं
यह मैं हूं
सिर्फ मैं हूं।
आकाश को नापती
सोनपाखी कहती है
यह मैं हूँ, सिर्फ मैं हूँ
नहीं नहीं नहीं
यह तो मैं हूं
सिर्फ मैं।

मुक्त

मुक्त
मैं मुक्त नीली झील हूं
घाट से बांधों मत
कगार से बंधी हूं
यही बहुत है।
मैं मुक्त गीत हूं
छंद से सजाव मत
भावों में सजी हूं
यही बहुत है।

तुम्हारा एक खत

मैं भूलने लगी थी
वे पहाड़ियां
वे झील/झीलों में झांकते वे पेड़
फूलों से गमकते वे जंगल।
सभी याद याद आ जाते हैं अचानक
सभी बोल उठते हैं अचानक
मिल जाता है जब
भूले हुए परिंदों
की तरह भटक कर आया हुआ
तुम्हारा एक खत!

प्यार

एक पुराना टेबुल
धूल भरे सेल्फ पर
तिरछी झुकी अधगिरी
ढेर सी पुस्तकें/पढ़ी-अनपढ़ी।
एक अस्त-व्यस्त,
सिमटी, बासी चादर
जिस पर सोने का
कभी मन नहीं किया मेरा।
खिड़की के पार
अपने ही मकान की ऊंची दीवार
जिसे छूने का कभी मन नहीं किया मेरा
पर यह कोठरी मेरी है
मुझे इससे बेहद प्यार है।

अकेलापन

मन के अकेलेपन से मैंने
कर ली है दोस्ती।
मन के अंदर
तैरता है तुम्हारा चेहरा
चाहती हूं छूना
पर फिसल जाता है
जाने कहां?
पता नहीं
मुझसे भागने का कोई
चुन लिया है तुमने भी
शायद कोई रास्ता
पर ढूंढ लूंगी मैं भी एक दिन
कोई रास्ता।
पर ढूंढ लूंगी मैं भी एक दिन
कोई रास्ता।
अब तो कर ली है मैंने
अकेलेपन से दोस्ती।

भरोसा

तुम जिस प्रेम की तलाश में हो
वह तो मेरे पास है
मेरा हाथ थामो
तुम्हें ले चलूंगी
धरती के उस टुकड़े पर
जहां प्रेम
तारों की शक्ल में
टूट कर गिरते हैं
कभी-कभी।

प्रेम

धरती का वह टुकड़ा है। प्रेम
जहां तारे टूट-टूट कर गिरते हैं।
प्रेम आसमान में फैला
सतरंगी इंद्रधनुष है।
पहाड़ों से उतरती
नाजुक सी धूप है प्रेम
ओस में पिरोया हुआ
मोती है प्रेम।
प्रेम बारिश है।
पेड़ों से झड़ते पानी की
हल्की फुल्की फुहार है प्रेम।
नदी किनारे
शीतल लहरों को
देखना है प्रेम।
समुद्र तल में
सुनहरी मछलियों को
छूना है प्रेम।
किसी लड़की के जूडे में
किसी का लगाया हुआ
फूल है प्रेम।
सदियों से
झरने के नीचे
सहस्त्र धाराओं के प्रचंड वेग को
अकेला झेलता
अविचल चट्टान है प्रेम!

प्रेम

तुम जब
अनेक समुद्रों
नदियों को पार करते हुए
लंबी-लंबी सड़कों के बाद
एक पगडंडी के रास्ते
मेरे पास आओगे
तब मैं
अपना सारा प्यार
तुम्हें सौंप दूंगी
और झाकूंगी
तुम्हारी आंखों में चुपचाप
तुम्हारा प्यार।

मां की पसंद

मां की पसंद
यह घर
मुझे याद है
मेरी मां के नाम है।
पर मां अपने इस घर में
अपनी पसंद की कोई भी चीज
नहीं रख सकती कहीं कभी।
वह हर काम
पापा से पूछ कर करती थी
हम सभी बच्चों में से
किसी को पता नहीं था
की मां को
क्या पसंद है क्या नहीं।
पर मां को हर किसी की
पसंद का पूरा पता था,
खाने से लेकर
हर बात का।
हमेशा ध्यान रखती थी मां
कि हर किसी की पसंद को
पूरा करती रहे वह
हर घड़ी, हर कहीं।

अपनी दुनिया

तुमने मुझे
पहले क्यों नहीं बताया

कि तुम मुझसे
बेहद प्यार करते हो?
तुमने मुझे
पहले क्यों नहीं कहा
कि इस सफर में
तुम मेरे साथ-साथ
चलना चाहते हो?
अच्छा है
तुम्हारी इस दुर्लभ
स्वीकृति के बाद
अब मैं भी देखूंगी
तारों-भरा आकाश
विशाल समुद्र
और इस दुनिया को
जो अब मुझे
एकदम अपने लगने लगी है।

रहस्यमई यात्रा

जिंदगी एक रहस्यमई यात्रा है।
सपने बुनते हम
सुख दुख को
चुन-चुन बुनते हम।
अगले पल क्या होगा
नहीं जानते हम।
प्यार से भींगते हम
नफरत झेलते हम
धूप में चले हम
छांव में खड़े हम
झील की तलाश में
जीवन की उलझन में
गिरते-पड़ते
बनते-बिगड़ते
उठते-गिरते
अंतिम सफर तय करते हम।

एक दिन सूरज

मन है, कितना धुआं-धुआं-सा
कुहासा है, कितना घिरा
गुम हो गया है कहां
टुकड़ा एक रोशनी का।
प्रतीक्षा करती हूं रोज
निकलेगा एक दिन
सूरज बड़ा-सा।

तुम्हारी किताब

तुम किताब खोलते हो
पढ़ते हो,
हर पंक्ति का मनन कर
अपनी डायरी में नोट करते हो।
फिर इनसे-उनसे
कहते फिरते हो
कि अमुक पंक्ति कितनी अच्छी है।
पर उनमें से किसी को भी
मालूम नहीं
कि वह किताब
मैं हूं।

मेरी किताब

मैं तुम्हें
किसी किताब की जिल्द में
छिपाकर रखे गए
प्रेम पत्र की तरह
महसूस नहीं करना चाहती।
मैं चाहती हूं
तुम एक खुली किताब की तरह रहो
जिसे मैं कभी भी, कहीं भी
रख सकूं गर्व के साथ

पढ़ने के टेबल पर। या खाने की मेज पर।
तुम मेरे स्वप्निल इंद्रधनुष हो
जिसे पार कर मैं
खो जाती हूं खुशबुओं के वन में।

खोया हुआ प्रेम

क्या अब लड़के
लिखना भूल गए हैं
प्रेम पत्र?
वह भूल गए हैं
किसी की आंखों में झांक कर
पा लेना
आकाश का असीम विस्तार?
वे भूल गए हैं
प्रेम की गहरी झील में
छलांग लगाकर
दोस्ती कर लेना
सुनहरी मछलियों से?
शायद इसलिए कि
आजकल की लड़कियां
बालों में फूल लगा
भूल गईं हैं
इतरा कर चलना।
पता नहीं
कब लौटेंगे अब
इनकी जिन्दगी में उनका
खोया हुवा प्रेम।

दूसरा बचपन

पालने में सुलाकर
आंखें मूंदने का
करती हूं इंतजार।
आंखें मूंद जाने पर
होता है
सपनों का विस्तार।
पालने में बंधी घंटियां
हौले से हिलती हैं
बजती है रूनझुंन
डरती हूं
समय से कहती हूं
रुक जाओ
फिर से आए
अपने बचपन को
जी भर देखूंगी
बार-बार।

पिछले बसंत का आना

हवा में उड़ता हुआ
एक पत्ता मिला
पिछले बसंत का।
हाँ
पिछले बसंत का ही तो था।
मैंने पहचान लिया।
एक खुले मैदान में
फूलों से लदा-फदा
एकाकी वह पेड़
हवा का हर पल
लुटाई थी अपनी गंध जिसने
पत्ता उसी की डाल पर ही तो था।
मैंने उठाया उसको
डायरी में बंद किया
जब भी लिखूंगी अब कविता
मिल जाएगा वह पत्ता स्वतः
याद आएगा मुझे फिर
पिछले बसंत का आना। ■

आज की अंतिम कविता

आज
जब परदा गिरने वाला है
मैं चाहती हूं आज
लिखना
एक कविता
खूब लंबी
और अंतिम कविता।
आज
जब मैं जब सदा के लिए
नेपथ्य में जाने वाली हूं
एक जरूरी काम की तरह
लिखना चाहती हूं एक कविता।
अब तक
बादलों की तरह उड़ते
आते जाते सपनों को मैं
करती रही विदा सदा
हाथ हिला-हिला।
चाहती हूं आज
एक पल रुक जाएँ ये बादल

मेरे आंगन के ऊपर
मुझे सहलाएं।
मैं छू लूं
स्मृतियों के टुकड़ों को
ढक लूँ
अतीत के उजाले से
अपने आपको।
खड़ी हो जाऊं
बचपन के वृक्षों के पास
उनकी ठंडी छांव में।
आज
चाहती हूं
बच्चों के बचपन में लौटना
वे जब खोलेंगे सपनों की दराज
मेरे जाने के बाद,
मेरे बुने अधबुने सपने
लिपट-लिपट जाएंगे उनसे
तब
मुझे नहीं मालूम
बच्चों की क्या होगी प्रतिक्रिया
उन्हें कैसा लगा, यह देखने
वापस नहीं आऊंगी कभी
आज
जब परदा गिरने वाला है
और हमेशा के लिए
नेपथ्य में जाने वाली हूं मैं
चाहती हूं
छोड़ जाऊं बच्चों के लिए
आज की अंतिम कविता।

- कान्ता सुधाकर

कान्ता सुधाकर
(30 सितंबर 1942–01 जनवरी 2022)

कान्ता सुधाकर का जन्म रांची में हुआ। शिक्षा राँची और पटना में हुई। परिस्थियाँ कुछ इस कदर बदलती रहीं कि उसकी एकेडेमिक शिक्षा अधूरी ही रह गई। उन्होंने हिन्दी के 'चन्द्रकान्ता संतति' से लेकर 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' तक के तमाम उपन्यासों' और अंग्रेजी और बंगला से हिन्दी में अनुवादित उपन्यासों को ढूँढ़ कर पढ़ा। उन उपन्यासों का प्रभाव इनकी कहानियों में स्पष्ट परिलक्षित मिलता है।

इनकी कुछ चुनी हुई कवितायें सन् 2009 में 'वह जो नदी है' नाम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुई। कान्ता सुधाकर की दूसरी और तीसरी किताब 'रौशनी की तलाश' तथा 'स्नेह-दंश' कविता और कहानी-संकलन के रूप में प्रकाशन के क्रम में है।

साहित्य के अलावा सामाजिक कार्यों में भी कान्ता सुधाकर की गहरी रुचि रही है। इनका घर सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक कर्मियों का चहेता घर बना रहा। अस्सी और नब्बे के दशकों में भागलपुर में प्रगतिशील युवकों द्वारा विदेशी भाषाओं के अनुवादित नाटकों को नुक्कड़ नाटकों में तब्दील कर शहर के चौक-चौराहे पर जब मंचित किए जा रहा था तब वे उन्हें देखने और प्रोत्साहित करने के लिए सबसे पहले उपस्थित होती थीं।

भागलपुर के घंटाघर चौक से उत्तर दिशा में आदमपुर जाने वाली सड़क किनारे गरीबों की झुग्गी-झोपड़ी की बस्ती को नगरपालिका द्वारा उजाड़े जाने के विरोध में होने वाले आंदोलन में इनकी महत्वपूर्ण भागीदारी रही। उन दिनों वे 'झोपड़ी बचाओ समिति' की अध्यक्ष थीं। इस आंदोलन के कारण प्रशासन को मजबूर होकर उन्हें बसने के लिए दूसरी वैकल्पिक जगह देने का आश्वासन देना पड़ा।

'गंगा मुक्ति आंदोलन' में भी इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। यह आंदोलन अपनी विशिष्टता और परिणाम के लिये सदा याद किया जाता रहेगा। बिहार में मुंगेर से लेकर साहिबगंज तक गंगा में एक 'महाशयजी' की जमींदारी चलती थी। पानी की जमींदारी। 'गंगा मुक्ति आन्दोलन' नारा था गंगा को मुक्त करो। गंगा पर जमींदारी नहीं चलेगी। आखिरकार गंगा पानी के जमींदार से मुक्त हुई।